

स्वावलंबन की दिशा में एक अचूक कदम

बहुतकनीकी जैविक खेती एवं वर्षाजल संग्रहण के मूलभूत आधारस्तंभ

प्रेमयोगी वज्र लिखित

एक खुशहाल एवं विकासशील गाँव की कहानी, एक पर्यावरणप्रेमी योगी की जुबानी

बहुतकनीकी जैविक खेती एवं वर्षाजल-संग्रहण के मूलभूत आधारस्तम्भ-

एक खुशहाल एवं विकासशील गाँव की कहानी, एक पर्यावरणप्रेमी योगी की जुबानी

वैधानिक टिप्पणी (लीगल डिस्क्लेमर)

इस पुस्तक को किसी पूर्वनिर्मित साहित्यिक रचना की नक़ल करके नहीं बनाया गया है। फिर भी यदि यह किसी पूर्वनिर्मित रचना से समानता रखती है, तो यह केवल मात्र एक संयोग ही है। इसे किसी भी दूसरी धारणाओं को ठेस पहुंचाने के लिए नहीं बनाया गया है। पाठक इसको पढ़ने से उत्पन्न ऐसी-वैसी परिस्थिति के लिए स्वयं जिम्मेदार होंगे। हम वकील नहीं हैं। यह पुस्तक व इसमें लिखी गई जानकारियाँ केवल शिक्षा के प्रचार के नाते प्रदान की गई हैं, और आपके न्यायिक सलाहकार द्वारा प्रदत्त किसी भी वैधानिक सलाह का स्थान नहीं ले सकतीं। छपाई के समय इस बात का पूरा ध्यान रखा गया है कि इस पुस्तक में दी गई सभी जानकारियाँ सही हों व पाठकों के लिए उपयोगी हों, फिर भी यह बहुत गहरा प्रयास नहीं है। इसलिए इससे किसी प्रकार की हानि होने पर पुस्तक-प्रस्तुतिकर्ता अपनी जिम्मेदारी व जवाबदेही को पूर्णतया अस्वीकार करते हैं। पाठकगण अपनी पसंद, काम व उनके परिणामों के लिए स्वयं जिम्मेदार हैं। उन्हें इससे सम्बंधित किसी प्रकार का संदेह होने पर अपने न्यायिक-सलाहकार से संपर्क करना चाहिए।

लेखक परिचय

प्रेमयोगी वज्र का जन्म वर्ष 1975 में भारत के हिमाचल प्रान्त की वादियों में बसे एक छोटे से गाँव में हुआ था। वह स्वाभाविक रूप से लेखन, दर्शन, आध्यात्मिकता, योग, लोक-व्यवहार, व्यावहारिक विज्ञान और पर्यटन के शौक़ीन हैं। उन्होंने पशुपालन व पशु चिकित्सा के क्षेत्र में भी प्रशंसनीय काम किया है। वह पोलीहाऊस खेती, जैविक खेती, वैज्ञानिक और पानी की बचत युक्त सिंचाई, वर्षाजल संग्रहण, किचन गार्डनिंग, गाय पालन, वर्मीकम्पोस्टिंग, वैबसाईट डिवेलपमेंट, स्वयंप्रकाशन, संगीत (विशेषतः बांसुरी वादन) और गायन के भी शौक़ीन हैं। लगभग इन सभी विषयों पर उन्होंने दस के करीब पुस्तकें भी लिखी हैं, जिनका वर्णन एमाजोन ऑथर सेन्ट्रल, ऑथर पेज, प्रेमयोगी वज्र पर उपलब्ध है। इन पुस्तकों का वर्णन उनकी निजी वैबसाईट demystifyingkundalini.com पर भी उपलब्ध है। वे थोड़े समय के लिए एक वैदिक पुजारी भी रहे थे, जब वे लोगों के घरों में अपने वैदिक पुरोहित दादा जी की सहायता से धार्मिक अनुष्ठान किया करते थे। उन्हें कुछ उन्नत आध्यात्मिक अनुभव (आत्मज्ञान और कुण्डलिनी जागरण) प्राप्त हुए हैं। उनके अनोखे अनुभवों सहित उनकी आत्मकथा विशेष रूप से "शरीरविज्ञान दर्शन- एक आधुनिक कुण्डलिनी तंत्र (एक योगी की प्रेमकथा)" पुस्तक में साझा की गई है। यह पुस्तक उनके जीवन की सबसे प्रमुख और महत्त्वाकांक्षी पुस्तक है। इस पुस्तक में उनके जीवन के सबसे महत्त्वपूर्ण 25 सालों का जीवन दर्शन समाया हुआ है। इस पुस्तक के लिए उन्होंने बहुत मेहनत की है। एमाजोन डॉट इन पर एक गुणवत्तापूर्ण व निष्पक्षतापूर्ण समीक्षा में इस पुस्तक को पांच सितारा, सर्वश्रेष्ठ, सबके द्वारा अवश्य पढ़ी जाने योग्य व अति उत्तम (एक्सेलेंट) पुस्तक के रूप में समीक्षित किया गया है। गूगल प्ले बुक की समीक्षा में भी इस पुस्तक को फाईव स्टार मिले थे, और इस पुस्तक को अच्छा (कूल) व गुणवत्तापूर्ण आंका गया था। प्रेमयोगी वज्र एक रहस्यमयी व्यक्ति है। वह एक बहुरूपिए की तरह है, जिसका अपना कोई निर्धारित रूप नहीं होता। उसका वास्तविक रूप उसके मन में लग रही समाधि के आकार-प्रकार पर निर्भर करता है, बाहर से वह चाहे कैसा भी दिखे। वह आत्मज्ञानी (एनलाईटनड) भी है, और उसकी कुण्डलिनी भी जागृत हो चुकी है। उसे आत्मज्ञान

की अनुभूति प्राकृतिक रूप से / प्रेमयोग से हुई थी, और कुण्डलिनी जागरण की अनुभूति कृत्रिम रूप से / कुण्डलिनी योग से हुई। प्राकृतिक समाधि के समय उसे सांकेतिक व समवाही तंत्रयोग की सहायता मिली, जबकि कृत्रिम समाधि के समय पूर्ण व विषमवाही तंत्रयोग की सहायता उसे उसके अपने प्रयासों के अधिकाँश योगदान से प्राप्त हुई।

अधिक जानकारी के लिए, कृपया निम्नांकित स्थान पर देखें-

https://demystifyingkundalini.com/

पुस्तक परिचय

यह पुस्तक तीन पुस्तक भागों को मिलाकर बनी है। प्रथम भाग में केंचुआ-पालन व जैविक खाद से सम्बंधित व्यावहारिक/स्वानुभूत जानकारी है। द्वितीय भाग में पोलीहाऊस व उसमें उगने वाली फसलों की खेती से सम्बंधित व्यावहारिक/स्वानुभूत जानकारी है। पुस्तक के तृतीय भाग में वर्षाजल संग्रहण से सम्बंधित समस्त जानकारी व्यावहारिक व स्वानुभूत रूप में उपलब्ध है।

लेखक ने अपने जीवन के बहुमूल्य वर्षों को प्रकृति के बीच में बिताया। उस दौरान उन्होंने केंचुआ-आधारित जैविक खेती, पोलीहाऊस आधारित खेती, और वर्षाजल संग्रहण के सम्बन्ध में गंभीर अध्ययन किया, व उन्हें वैज्ञानिकता के साथ समग्र रूप में अपनाकर बहुत से प्रेक्टिकल तजुर्बे हासिल किए। अपने उन्हीं अनुभवों को लेखक ने एक आत्मकथा के रूप में, सुन्दरता के साथ इस पुस्तक में प्रकट किया है।

इस पुस्तक के निम्नलिखित भाग हैं-

1) भाग-1 केंचुआ पालन- एक अध्यात्म-मिश्रित भौतिक शौक

2) भाग-2 पोलीहाऊस खेती- एक अध्यात्म-मिश्रित भौतिक शौक

3) भाग-3 वर्षाजल संग्रहण- एक अध्यात्म-मिश्रित भौतिक शौक

भाग-1

केंचुआ पालन-

एक अध्यात्म-मिश्रित भौतिक शौक

पुस्तक भाग परिचय

इस पुस्तक/पुस्तक भाग में केंचुआ-पालन से सम्बंधित सारी जानकारियाँ हैं। लेखक ने 2-3 सालों तक खुद केंचुआ पालन किया था। उस दौरान लेखक को बहुत से भौतिक व आध्यात्मिक अनुभव हुए। बेशक लेखक ने बहुत सी जानकारियां सम्बंधित विभाग के अधिकारियों से और इंटरनेट से प्राप्त कीं, यद्यपि उन्हें दैनिक व्यवहार में ढालने का काम स्वयं लेखक ने ही किया। लेखक का मानना है कि इस लघु पुस्तक को पढ़कर कोई भी व्यक्ति केंचुआ-पालन में पारंगत हो सकता है।

केंचुआ खाद बनाना एक बहुत ही मनोरंजक शौक है। केंचुआ खाद निर्माण का भी एक अपना दर्शन है। केंचुए रात-दिन मेहनत करते रहते हैं, ताकि ईश्वर के द्वारा निर्मित अभूतपूर्व पृथ्वी ग्रह सही-सलामत रह सके, और लगातार प्रगति कर सके। केंचुए पर्यावरण प्रेमी होते हैं। वे बदले में किसी भी विशेष लाभ की अपेक्षा नहीं रखते। उन्हें तो बस खाने के लिए रूखा-सूखा जैविक कचरा और पीने के लिए थोड़ा सा पानी चाहिए होता है। यहाँ तक कि जीवों के जिस मल-मूत्र से सभी जीवधारी दूर भागते हैं, वे उसे भी परिष्कृत करके उससे उत्तम प्रकार की खाद बना देते हैं। उस खाद में अनेक प्रकार के लाभकारी जीवाणु होते हैं। उस खाद से पेड़-पौधों को सारे पोषक तत्त्व उचित मात्रा में प्राप्त हो जाते हैं। इस प्रकार से केंचुए बड़े से बड़े परिष्करण यंत्र को भी काम के मामले में पछाड़ देते हैं। एक प्रकार से केंचुए निस्स्वार्थ भाव से पर्यावरण की सहायता करते हैं। वे जमीन की सबसे ऊपर की मृदा का निर्माण करते हैं।

मित्रो, केंचुआ खाद निर्माण का शौक मुझे तब चढ़ा था, जिस समय हिमाचल प्रदेश का कृषि विभाग लगभग 30 फीट बाय 6 फीट के केंचुआ खाद यूनिट पर अधिकतम 30,000 रूपए की सब्सिडी दे रहा था। उस पर लोहे की चद्दर का छत भी बना होता था, और साथ में बाहर को, यूनिट के अन्दर डाले गए अतिरिक्त सिंचाई के पानी की निकासी को इकठ्ठा करने वाला एक छोटा सा पिट भी होता था। वह जल काले रंग का, बहुत गुणकारक व पौष्टिक होता था। कीड़े भगाने के लिए भी उसकी स्प्रे सब्जी के ऊपर की जा सकती थी। उस योजना को प्राप्त करने के लिए लाभार्थी के नाम जमीन होना जरूरी था। जिस जगह पर केंचुआ खाद यूनिट बनाना होता था, उस जगह का पर्चा-ततीमा पटवारी से प्राप्त करना होता था। एक विभागीय प्रपत्र को भी भरना होता था। ये सभी कागज विभाग में जमा करवाने होते थे। लगभग 5-6 महीने के अन्दर यह यूनिट स्वीकृत हो गया था। इस पर 25,000 रुपए की सब्सिडी मिली, क्योंकि विभाग के पर्यवेक्षकों ने उसमें कुछ कमियाँ दिखाईं। वह विभाग के द्वारा दर्शाए गए स्टैण्डर्ड से कुछ कम गुणवत्ता का था। मेरा अपना 15,000 रुपए का खर्चा आया। इस तरह से कुल मिलाकर मेरा 40,000 रुपे का खर्चा आया। यह इसलिए ज्यादा आया, क्योंकि केंचुआ खाद यूनिट सड़क से लगभग दो किलोमीटर की दूरी पर था। जिससे निर्माण सामग्री को ढोने के लिए खच्चरों का प्रयोग करना पड़ा, जिस पर 10,000 रुपए का खर्च आ गया। निर्माण सामग्री में ईंट, सीमेंट, रेत, लोहे की चद्दर और एंगल आयरन थे। उस यूनिट में तीन स्थान पर खडा एंगल आयरन (पिलर के तौर पर) लगाया गया। इसके दूसरी साइड भी ऐसे ही एंगल आयरन लगाए गए। फिर उनको टॉप पर आपस में जोड़कर एक जाला जैसा बनाया, जिस पर छत की चद्दर टिक सकती। एक कमी यह रही कि खर्चा कम करने के चक्कर में खड़े एंगल आयरन की मोटाई पौना इंच रखी गई। इससे शैड तेज हवाओं में उरे-परे झूलने लगता था। हालांकि, एक जाल बना होने के कारण छत कभी नीचे नहीं गिरा। अच्छा होता यदि खड़े एंगल आयरन एक इंच मोटाई के रखे गए होते। उरे-परे का जाल बनाने के लिए तो कमतर साईज भी काफी था। उसकी ऊँचाई एक तरफ से 7 फीट थी, और दूसरी तरफ 6 फीट थी, ताकि सिर छत से न बजता, और छत पर पानी को बहने के लिए एक पर्याप्त ढलान भी मिल जाती।

उस यूनिट में बराबर आकार के 6 चैंबर थे, जो बीच-२ में ईंट की दीवार बना कर बनाए गए थे। फर्श को बहुत पतला रखा गया था। उसको बनाने वाले मसाले/मोर्टार मिक्चर में सीमेंट की मात्रा बहुत कम रखी गई थी, और उसे बहुत

पतला बनाया गया था। ऐसा इसलिए किया गया, ताकि फर्श से होकर अतिरिक्त पानी नीचे की जमीन में रिसता रहता, और फर्श पर पानी का जमावड़ा न हो पाता

ज्यादा पानी में केंचुए कम काम करते हैं, और मर भी सकते हैं, क्योंकि ज्यादा पानी में उन्हें सांस लेने के लिए पर्याप्त हवा/ऑक्सीजन नहीं मिलती। पूरे फर्श पर एक कोने की तरफ को डूबती हुई हलकी ढलान/स्लोप रखी गई थी। उस स्लोप वाली साईड में एक लम्बी नाली दीवार के बाहर पूरी लम्बाई में थी। उस नाली में भी पिट की तरफ को स्लोप रखी गई थी। हरेक चैम्बर में फर्श से जुड़ा हुआ एक ईंट की चौड़ाई के बराबर छेद बाहर को रखा हुआ था, जो बाहर की ड्रेनेज नाली में खुलता था। केंचुओं के लिए वहां से भी कुछ हवा अन्दर घुस सकती थी। यूनिट को मजबूती देने के लिए मुख्य घेरे की दीवारों की बाहरी सतह को सीमेंट का पलस्तर किया गया था। दीवार की अन्दर की सतह और चैंबर बनाने वाली अंदरूनी दीवारों की ईंटों पर पलस्तर नहीं किया गया था, ताकि खर्चा कम आता। मेरा अपना यह भी ख्याल था कि अतिरिक्त जल को ईंट सोख लेगी, और धीरे-२ थोड़े-२ पानी को केंचुओं के लिए छोड़ देगी। वैसे अंदरूनी सतह को भी पलस्तर कर सकते हैं। चैंबर की दीवारों में बहुत सारे छेद रखे गए थे, जो ईंट की चौड़ाई के आकार के होते थे। एक चैंबर में जब खाद पूरी तैयार हो जाती थी, और वहां कच्चा गोबर-मिश्रण समाप्त हो जाता था, तब वे खुद दूसरे चैंबर को चले जाते थे। शायद उन्हें कच्चे गोबर की गंध खींचती थी। बाहरी दीवार में जो ड्रेनेज के लिए छेद था, उससे केंचुओं के भागने की आशंका मुझे शुरू-२ में होती थी। पर ऐसा कुछ नहीं हुआ। क्योंकि केंचुए खाने-पीने की चीजें छोड़कर कहीं नहीं जाते। गोबर-चैंबर की ऊँचाई अढाई फीट रखी गई थी। अधिकतम हवा इतनी ही मोटाई तक घुस पाती है, जो केंचुओं के सांस लेने के लिए जरूरी है। पर मैंने देखा कि केंचुए डेढ़ फीट की गहराई तक ही बढ़िया खाद बनाते हैं। उससे नीचे तो वे कम और मजबूरी में ही जाते हैं। अब तो विभाग ने चैंबर की लम्बाई व चौड़ाई भी बहुत कम कर दी है। इससे केंचुए एक-दूसरे के ज्यादा नजदीक रह पाते हैं, जिससे ज्यादा अच्छा काम और ज्यादा प्रजनन कर पाते हैं। केंचुए अपनी चमड़ी से सांस लेते हैं। उसके लिए उनकी चमड़ी का गीला रहना बहुत जरूरी है।

एक नजदीकी किसान के पहले से चल रहे केंचुआ खाद यूनिट से अच्छी नसल के केंचुए लाए गए। वे अमरीकन होते हैं। केंचुओं से भरपूर 2-3 किलो गोबर एक लिफाफे में लाकर यूनिट के एक चैंबर में डाला गया। 2-3 महीने में वह यूनिट केंचुओं से भर गया। आमतौर पर यूनिट में केंचुए सीधे तौर पर नजर नहीं आते, क्योंकि वे किसी मनपसंद जगह पर इकट्ठे होकर छुपे रहते हैं। उनकी बनाई हुई खाद से ही उनकी उपस्थिति का अंदाजा लगता है। कहते हैं कि केंचुओं के लिए ज्यादा पानी नहीं चाहिए। पर मैंने देखा कि वे ज्यादा पानी पसंद भी करते हैं, कई बार। मध्यम नमी में ही वे भरपूर खाद बनाते हैं। जहाँ ज्यादा पानी रुका होता था, वहां पर केंचुओं के अंडे ही अंडे दिखते थे। नमी कम भी नहीं होनी चाहिए। वे खुद चैंबर में अनुकूल नमी, तापमान व हवा वाला स्थान ढूंढते फिरते हैं। जहाँ पर ये तीनों परिस्थितियां अच्छी हो, वे वहीँ पर बस जाते हैं।

केंचुए की औसत आयु लगभग 1-2 साल की होती है। बहुत से केंचुए प्रतिदिन पैदा होते रहते हैं, बहुत से बूढ़े होते रहते हैं, और बहुत से मरते रहते हैं। इससे जीवन की अस्थिरता और नश्वरता का प्रतिपल आभास होता रहता है, जिससे दार्शनिक दृष्टिकोण सुदृढ़ होता रहता है। साथ में, इससे प्रेरित होकर आदमी अपने जीवन को सफल बनाने के लिए

क्रियाशील रहता है। वह अपने मानव जीवन से अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करने की चेष्ठ करता रहता है, जिसमें आध्यात्मिक लाभ भी मुख्य होता है।

मैंने केंचुआ खाद यूनिट के साथ ही, उसी की उंचाई के स्तर पर एक पानी का टैंक बनवाया। इसलिए उससे पानी ग्रेविटी से व पाईप से होता हुआ केंचुआ खाद यूनिट तक नहीं आ सकता था। इसलिए मुझे बाल्टियों से पानी ढोकर डालना पड़ता था। मैं फव्वारे युक्त बाल्टी का प्रयोग करता था। उससे बहुत सारा समय लगता था, तथा पर्याप्त पानी भी नहीं गिर पाता था। इसलिए मैं उसका आगे का फूल खोल कर फव्वारे की नली के मुंह पर हाथ रखकर सीधे ही सींचने लगा। यद्यपि टैंक से 15-20 कदम तक ही पानी ढोना पड़ता था, फिर भी मैं बहुत थक जाता था। तब मैं ग्रेविटी से स्वतः चलने वाले पानी का महत्त्व समझने लगा, और सोचने लगा कि काश टैंक थोड़ा सा भी ऊँचाई पर होता, तो मैं पाईप फिट करके निश्चिन्त होकर आस-पास में दूसरे काम कर लेता। कई बार टूलू पम्प लगाने का विचार आया, पर वह महन्गा पड़ता, क्योंकि मेरा यूनिट छोटा व घरेलु था।

वैसे यह बता दूं कि टैंक मैंने बहुत बाद मैं बनाया था। पहले तो मैं वहां 200 लीटर के दो ड्रम पानी के पाईप से भर लेता था। वह पानी पीने का था, और ऊंचाई वाले स्थान से आता था। वे पानी के ड्रम दो-तीन हफ्ते के लिए चल पड़ते थे। बाद में बने टैंक को मैं बारिश के, खुली जमीन पर बहते हुए पानी से ही भरता था। उसके निर्माण के बारे में आगे मनरेगा वाले भाग में या मनरेगा से सम्बंधित दूसरी पुस्तक में बताया जाएगा। उस वर्षा जल संग्रहण टैंक तक मैंने पूरी ऊपरी ढलान का पानी जोट रखा था। वैसा मैंने टैंक से ऊपर तक दोनों तरफ एक-२ तिरछी नाली खोदकर किया था। ऊपर की ओर वे नालियाँ बाहर की और फैल रहीं थी। उससे टैंक के लिए एक बहुत बड़ा कैचमेंट एरिया बन गया था। कई बार तो एक ही भारी बारिश से टैंक आधा भर जाता था। वह टैंक लगभग 20,000 लीटर केपेसिटी का था। बीच-२ में मैं उन नालियों से पत्ते वगैरह हटा कर उन्हें साफ कर लिया करता था, ताकि टैंक तक पानी के प्रवाह में दिक्कत न आती।

बरसात में तो यूनिट के लिए नाममात्र के पानी की जरूरत होती है, क्योंकि चारों तरफ हवा में पर्याप्त नमी होती है। सर्दियों के सूखे दिनों में कुछ ज्यादा पानी चाहिए होता है। ज्यादा पानी डालने से यूनिट का तापमान गिरने का डर भी बना रहता है। कम तापमान में केंचुए नाममात्र का काम करते हैं, और बढ़ते भी नहीं हैं। उनकी असली बढ़ोत्तरी और प्रजनन तो बरसात में ही होते हैं। उस समय यूनिट में चारों तरफ उनके अंडे ही अंडे दीखते हैं। वे पीले रंग के होते हैं, और साबूदाने के आकार के होते हैं। अगर परिपक्व अंडे को फोड़ो, तो उसमें से एक या दो सूक्ष्म केंचुए निकलते हैं। पहले मुझे लगता था कि जब केंचुए केंचुआ-चैंबर में बहुत ज्यादा बढ़ जाएंगे, तब क्या होगा। पर वैसा नहीं होता। उनकी संख्या स्वयं नियंत्रित होती है। वे एक आवश्यक व सुरक्षित सीमा के बाद बढ़ोत्तरी करते हुए मैंने कभी देखे ही नहीं। इसी तरह, मुझे पहले उनके बारे में यह भ्रम था कि उनसे ग्लानि होती होगी, क्योंकि वे बड़े-२ व मोटे-२, सुस्त से मिट्टी के केंचुए होते होंगे। पर वैसा नहीं है। वे मिट्टी के केंचुए नहीं होते। वे तो पतले व छोटे से, बड़े चुस्त, व रोचक होते हैं। उनसे ग्लानि नहीं होती।

बरसात में तो मैं यूनिट को सींचता ही नहीं था। ज्यादा से ज्यादा यदि शुष्क दिन होते, तो महीने में एक बार फव्वारे से पानी की महीन बुहार छोड़ देता था, ताकि यूनिट की ऊपर वाली कच्ची सतह (बिछौना आदि) पर हलकी नमी रह सकती। सर्दियों में मैं हफ्ते के एक दिन यूनिट की अच्छी सिंचाई कर लेता था। एक चेंबर में 15 लिटर के दो फव्वारे डाल देता था। गर्मियों में मैं हफ्ते के दो दिन यूनिट की गहरी सिंचाई कर लेता था। एक चैंबर में 4-5 फव्वारे डाल देता था।

पहले मुझे लगता था कि कहीं चिड़िया, कौवे, सांप, नेवला, गोह आदि जानवर केंचुओं को न खा जाएं। पर ऐसा नहीं हुआ। केंचुए बहुत चालक होते हैं। वे खुली सतह पर कभी नहीं रहते। वे एकदम से गहराई में चले जाते हैं। एक वजह यह भी रही होगी कि यूनिट के ऊपर छत की वजह से जानवर न आए हों। वैसे कई जगह ऐसी शिकायतें मिलती हैं। मेरे पास तो बिना छत के दूसरे यूनिट पर भी किसी जानवर ने हमला नहीं किया। शायद जगह-२ पर निर्भर करता है। सांप तो शायद ही केंचुओं को खाए। सबसे ज्यादा डर तो गोह का ही रहता है। क्योंकि वह अपने पंजों से कम्पोस्ट को खोदकर केंचुओं को ढूंढ सकती है।

केंचुआ-भक्षक कीड़े तो कम्पोस्ट के अन्दर ही पैदा होते रहते हैं। सबसे हानिकारक सेंटीपीड है। यह बाल पेन के रिफल के आकार जितने तक लम्बे व मोटे हो सकते हैं। इसके सैकड़ों पैर दोनों तरफ पूरे शरीर में लाइन में लगे होते हैं। वे सांप की तरह व बहुत तेज भागते हैं। उन्हें देखते ही कुचल देना चाहिए। हाथ लगने पर वे डसते भी हैं। ऐसा लगता है कि मधुमक्खी ने काटा है। पर दर्द उससे भे तेज और ज्यादा तेरी तक बनी रहती है। एक बार तो मुझे खाद को निकलते समय एक बिच्छू भी मिला था। अच्छा रहता है, यदि हाथ में चमड़े के दस्ताने पहने जाएं। ऐसा ही दूसरा हानिकारक कीड़ा मलेशा (पहाड़ी भाषा में) है। यह फसल को भी हानि पहुंचाता है। यह काजू की तरह गोल मुड़ा रहता है। सफेद होता है। आंख के बिन्दु काले होते हैं। स्पंजी होता है। लगभग काजू से चार गुना आकार तक का हो सकता है। इसे बाहर खुले में फेंक दें, ताकि जल्दी से मिटटी में न घुस सके। चिड़िया इसे खाने दौड़ कर आती है। इसके द्वारा डसने की खबर नहीं है। सावधानी से, यूनिट के ऊपर का घास आदि कुदाली या दराती से हिला लेना चाहिए, क्योंकि सांप तो कहीं भी घास-फूस में छुपे हो सकते हैं। सीधा हाथ नहीं डालना चाहिए।

शुरू-२ में मैं चैंबर के ऊपर न चलकर बाहर-२ से चलकर उसकी सिंचाई करता था। मैंने सुना था कि ढेर को हवादार बनाए रखने के लिए उसे ज्यादा दबाना नहीं चाहिए। बाद में मैं खुलकर चलने लगा। मुझे तो कोई फर्क नहीं लगा। इसी तरह, मैंने सुना हुआ था कि भारी कम्पोस्ट के ढेर को महीने में एक बार पलटा भी देना चाहिए, ताकि वह हवादार बन सके, और पूरे ढेर में समान मात्रा में केंचुए पहुँच सके। उसमें बहुत मेहनत और ताकत लगती थी। मुझे उससे लाभ की बजाय नुक्सान ही लगा, क्योंकि उससे कई बार कुदाल आदि की चोट से केंचुए मर जाते थे। वास्तव में, केंचुओं का अपना नेचुरल सिस्टम डिस्टर्ब हो जाता था। फावड़े का प्रयोग तो कभी नहीं करना चाहिए। उससे बहुत से केंचुए कट कर मर जाते हैं। हो सके, तो खेत में भी फावड़े का कम से कम प्रयोग करें, क्योंकि खेत की मिटटी में भी केंचुए घुमते रहते हैं। वास्तव में, केंचुए चारों तरफ घुमते हुए, खुद ही ढेर को टनल/सुरंग-युक्त व हवादार बनाते रहते हैं। उससे ढेर का तापमान भी सामान्य हो जाता है, और एक प्रकार से ढेर की मिक्सिंग भी खुद हो जाती है।

मैंने सुना था कि कम्पोस्ट में ज्यादा गर्मी पैदा होने से केंचुए मर जाते हैं। पर वास्तव में ऐसा नहीं होता। वे अपने लिए कोई न कोई सुरक्षित व ठंडा कोना ढूंढ ही लेते हैं। वैसे तो गोबर-युक्त कचरे के ढेर को सीधा यूनिट में नहीं डालना चाहिए। उसे 15 दिन तक बड़े ढेर में ऐसे ही बाहर पड़ा रहने दें। उस दौरान उसमें उच्च तापमान पैदा हो जाता है। उससे उसके बीमारी पैदा करने वाले कीटाणु व खरपतवार के बीज जल कर मर जाते हैं। वह ढेर नरम भी पड़ जाता है, जिसे केंचुए बहुत पसंद करते हैं। फिर भी यदि यूनिट के कम्पोस्ट में बहुत अधिक गर्मी लगे, तो ठन्डे पानी की सिंचाई करने से भी उसका तापमान गिर जाता है।

केंचुए किसी भी कार्बनिक पदार्थ को खा जाते हैं, बशर्ते वह सड़ने वाला होना चाहिए। केंचुए सड़ने की रफ़्तार को भी बढ़ा देते हैं। चीड़ वृक्ष की सूइनुमा पत्तियां, जो साधारण कम्पोस्टिंग के बाद भी जस की तस दिखती हैं, वे केंचुआ पिट में जल्दी व पूर्ण रूप से सड़ जाती हैं। इसलिए धीरे सड़ने वाले कम्पोस्ट के लिए तो केंचुआ पिट वरदान है। वास्तव में पत्तों के ऊपर सड़ी हुई परत को केंचुए लगातार खाकर उन्हें नंगा करते रहते हैं। साथ में उनकी विष्ठा का सड़ाने वाला कीटाणु भी पत्तों में मिल जाता है। इस तरह पत्ता जल्दी सड़ जाता है।

हैरानी की बात है कि केंचुए के दांत नहीं होते, फिर भी यह सख्त से सख्त जैविक पदार्थ को भी सड़ा देता है। वास्तव में वे अधसड़े जैविक पदार्थ के छोटे-२ टुकड़ों को एक प्रकार से चूस कर निगलते हैं। आप आराम से केंचुए को अपनी हथेली पर रख सकते हैं। इससे सिद्ध हो जाता है कि केंचुआ कितना अधिक भोला और अहिंसक जीव होता है। ये गुण हमें इससे सीखने चाहिए।

मैंने सुना था कि केंचुआ खाद डेढ़ महीने में तैयार हो जाती है। पर मुझे तो अढाई महीने से कम समय में कभी भी तैयार नहीं मिली, वह भी बरसात में मिली। सर्दियों में तो पूरे 5-6 महीने के मौसम में एक बार ही मुश्किल से तैयार होती थी। शायद दक्षिणी भारत या मैदानी क्षेत्रों में ज्यादा कम समय में तैयार हो जाती हो। गर्मियों में भी 3-4 महीने लग जाते थे। इसका कारण यह भी हो सकता है कि मेरे यूनिट की गहराई अढाई फीट थी। उससे केंचुए दो शिफ्टों में खाद बनाते थे। पहली शिफ्ट में वे ऊपर की डेढ़ फीट की परत सड़ाते थे। फिर जब उससे हवा नीचे को क्रोस हो जाती थी, और वह डेढ़ फीट की परत सिकुड़कर आधा फीट की रह जाती थी, तब केंचुए दूसरी शिफ्ट में निचले वाली 1 फूट की परत सड़ाते थे। केंचुआ खाद बनने के बाद वह मूल आकार से लगभग एक तिहाई से एक चौथाई तक सिकुड़ जाती है।

मैं हरेक पिट को बीच-२ में चैक भी करता रहता था। मैं ऊपर से डाला गया एक बिछौना हटा कर, हाथ से व कुदाली से 2-4 इंच की गहराई का जायजा लेता था, किसी एक स्थान पर। जब केंचुआ खाद तैयार हो जाती है, तब वह चाय-पत्ती की तरह दानेदार व भुरभुरी हो जाती है। ऊपर से बिछौना इसलिए रखा जाता है, ताकि केंचुओं को सुरक्षा मिले और तापमान भी बना रहे। सर्दियों में उसकी मोटाई बढ़ा दी जाती थी, ताकि अन्दर कुछ गर्माईश बनी रहती। कई बार यदि नीचे गोबर में ज्यादा हीट बने तो केंचुए ऊपर आकर बिछौने में सुरक्षित हो जाते हैं। वैसे तो वे कुछ गहराई में रहना ही पसंद करते हैं। जहाँ मेरा यूनिट था, वहां नम, छायादार, व सीधी हवा से रहित स्थान था। ऐसी जगह पर केंचुए ज्यादा खुश रहते हैं। पर वहां धुप भी लगनी चाहिए, ताकि सर्दी में तापमान न गिरे। मेरे स्थान की यही कमी थी कि वहां

सर्दियों में धुप कम आती थी। मैंने पोलीशीट के परदे लगाने के बारे में भी सोचा, पर वह छोड़ दिया, क्योंकि वह महंगा व अव्यावहारिक होता। इतना मैंने जरूर किया कि दीवार व गोबर के ढेर के बीच में मोटे तिनकों (स्ट्रा) का बिछौना पैक कर दिया, ताकि इन्सुलेशन बन जाती। दूसरा तरीका यह किया कि यूनिट की सतह के बिछौने पर मोटी जूट की बोरियां दाल दीं। इन उपायों से कुछ फायदा मिला।

जब किसी चैंबर में खाद तैयार हो जाती थी, तब उसकी सिंचाई उसे निकालने से 15-20 दिन पहले बंद कर देता था। उससे खाद की चिकनाहट ख़त्म होकर वह भुरभुरी हो जाती है। इससे उसे निकालने और छानने में आसानी होती है। केंचुए भी धरातल की चिकनाहट की तरफ चले जाते हैं। एक चैंबर मैंने खाली रखा हुआ था, ताकि छानी हुई खाद को उसमें रख सकता। मैंने रेता छानने वाली बड़ी जाली का प्रयोग किया। खाली चैंबर में उसे फिट करके उस पर तैयार चैंबर की खाद तसले से ढोकर उसके ऊपरी छोर पर डालता। फिर मैं जाली को हाथ से थपथपाता था, जिससे वह मिक्चर जाली पर छनता हुआ नीचे की ओर लुढकता था। अंत में नीचे थोड़ा सा मोटा माल बचता था, जो छन नहीं पाता था। उसमें गोबर के छोटे-बड़े ढेले, पेड़ के अधसड़े छिलके, पेड़ों की मोटी व अधसड़ी टहनियां/टुकड़े, कुछ कंकड़, और सारे केंचुए होते थे। गोबर के ढेलों के अन्दर बहुत से केंचुए मिलते हैं। उसमें से कंकड़ बाहर फेंक कर, मैं उस 2-4 मुट्ठी भर मोटे माल को सड़ने के लिए कच्ची खाद के चैंबर में डाल देता था। जो खाद छन आती थी, वह साफ, गंध रहित व लिफाफे में पैक करने लायक होती थी। गंध तो यूनिट में कहीं भी नहीं होती थी। न ही मक्खी-मच्छर होते थे। पशुशाला में मक्खी-मच्छर न फैले, इसके लिए यह एक बढ़िया उपाय है। यूनिट पशुशाला से कुछ 100-200 मीटर की दूरी पर होना चाहिए। सीधा ही पशुशाला से गोबर उठाकर उसे प्रतिदिन यूनिट में डालते रहो। इससे पशुशाला के पास गोबर का ढेर नहीं लगेगा, जिससे वहां मक्खी-मच्छर नहीं होंगे।

कई बड़े फार्मों में तो बिजली की मोटर से चलने वाली छनन जाली भी लगाई जाती है। उसे कम स्पीड पर ही चलाना होता है, नहीं तो झटकों से केंचुए परेशान/कमजोर हो जाते हैं, और कई तो मर भी जाते हैं। वैसे कई लोग इस तरीके को केंचुओं के लिए ठीक नहीं समझते। मेरे एक मित्र ने देसी तरीका अपना कर एक छनन यंत्र खुद बनाया था। उसने घरेलु मोटर को एक छनन जाली के साथ कुछ लोहे की छड़ों व पहियों की सहायता से जोड़ दिया था। हालांकि उसका भी यही कहना था कि उससे कोई विशेष लाभ नजर नहीं आता।

वास्तव में, मुझे उपरोक्त सभी क्रियाकलाप एक अनुभवी वृद्ध ने सिखाए थे। वास्तव में, वे हमारे घर में मासिक पारिश्रमिक पर काम करते थे। उन्होंने कभी किसी सरकारी योजना के अंतर्गत केंचुआ-खाद का प्रशिक्षण प्राप्त किया था। मैं उनके साथ काम करते-करते सभी तरीके सीख गया था।

उपरोक्त छानने वाला तरीका मुझे कुछ मुश्किल व अव्यावहारिक लगा। वह तरीका छोटे लिफाफों में खाद को पैक करके दुकान में सीधा बेचने के लिए तो ठीक था। पर बाजार में उसकी मांग ही नहीं थी। लोग गमलों के लिए भी रासायनिक खादों पर भरोसा करते थे, क्योंकि वह एकदम रिजल्ट देती थी। कुछ लोग जो केंचुआ खाद के फायदे समझते थे, वे मैदानों से आई हुई सस्ती, हलकी गुणवत्ता की, व मिलावटी जैविक खाद खरीदते थे। इसलिए मुझे तो उसका प्रयोग

अपने खेतों के लिए ही करना पड़ा। इसलिए तब मैं बिना छाने ही खाद को इकठ्ठा करने लगा। इसके लिए, पहले मैं 6 इंच की गहराई तक चैंबर की खुदाई करता था। 5 मिनट इंतजार करता था। उतनी देर में केंचुए खुदी हुई परत से नीचे चले जाते थे। वास्तव में, जहां पर खुदाई की होती है, वहां पर केंचुए कई दिनों तक नहीं लौटते। उस खुदी हुई परत को इकट्ठा करके खाली चैंबर में डाल देता था। फिर अगली 6 इंच की परत तक ऐसा ही करता। इस तरह से अंतिम 6 इंच की परत आ जाती। वहां पर केंचुओं की बड़ी भीड़ इकट्ठी हो जाती थी। फिर मैं 2-2 इंच की परत को सावधानी से खोदता, ताकि केंचुओं को चोट न लगा करती। फावड़े का इस्तेमाल न करें। जो कुदाली प्रयोग करें, वह आगे से पैनी न हो। अंतिम दो इंच की फर्श वाली परत में तो जितना वजन खाद का होता था, उससे कहीं ज्यादा केंचुओं का होता था। उसको मैं पहले छानने लगा, ताकि मैं खाद का एक-२ कण इकठ्ठा कर सकता। फिर मैंने सोचा कि क्यों केंचुओं को परेशान किया जाए, और क्यों न उसे वैसा ही पड़ा रहने दूं। मैंने वैसे ही किया। जब उस चैंबर में कच्चा गोबर डाला, वे केंचुए गोबर खाने खुद ही ऊपर आ गए। उस अंतिम ढेर को ज्यादा दिन खाली नहीं रखना चाहिए, वर्ना केंचुओं को नुक्सान हो सकता है। कहते हैं कि पूरी सड़ी हुई केंचुआ खाद केंचुओं के लिए नुकसानदायक होती है। इसलिए उसमें जल्दी से कच्चा माल डालो, ताकि केंचुए उसे खाने ऊपर आ जाए।

केंचुआ खाद बहुत हलकी हो जाती है, इसलिए उसे ढोना बहुत आसान होता है। इसलिए मैंने उसे दूर के खेतों में डालने का निर्णय लिया। बाद में मेरा पोलीहाऊस तैयार हो जाने पर उसे पोलीहाऊस में डालने लगा। पोलीहाऊस में तो यह भरपूर लाभ देती है, क्योंकि यह बारिश के व खुले पानी से इधर-उधर को नहीं बहती, और धुप-हवा से भी नहीं सूखती। कच्चा गोबर भारी होता है, इसलिए यूनिट को पशुशाला के नजदीक होना चाहिए। मेरा यूनिट 200 मीटर की दूरी पर था, इसलिए गोबर ढोने में बहुत सी ताकत नष्ट हो जाया करती थी।

केंचुआ पालन का भी अपना एक दर्शन है। यह तांत्रिक दर्शन व कर्मयोग से मिलता-जुलता है। तंत्रयोग में कुण्डलिनी को नागिन के रूप की तरह माना गया है। वह नागिन की तरह शरीर में लचक के साथ चलती है। केंचुए भी नाग की तरह ही होते हैं। इसलिए केंचुए और कुण्डलिनी के बीच में आपसी सम्बन्ध हो सकता है। मुझे तो ऐसा ही लगा। केंचुआ पालन शुरू करने के बाद मेरी कुण्डलिनी तेजी से बढ़ने लगी।

दूसरे तरीके से देखने पर केंचुए महान कर्मयोगी होते हैं। वे जी-जान से अपने काम में लगे रहते हैं, और बदले में भोजन-पानी के इलावा किसी चीज की ख्वाहिश नहीं रखते हैं। वे उस रूखे-सूखे अपशिष्ट पदार्थ से ही गुजारा कर लेते हैं, जो किसी के काम के नहीं होते। इस तरह से वे वातावरण को साफ-सुथरा रखते हैं। यदि वे सफाई में मदद न करें, तो बहुत सी गंभीर बीमारियों के फैलने का अंदेशा बना रहता है। वे वफादार नौकर होते हैं, और निष्काम भाव से कर्म में तत्पर रहते हैं। आदमी तो मालिक के डर से ही काम करता है। अपना कर्तव्य समझ कर काम करने वाला आदमी तो विरला ही होता है। केंचुए के पास मालिक को हर घड़ी डंडा लेकर खड़े होने की जरुरत नहीं होती। उन्हें तो बस भोजन-पानी डाल दो, तो वे कई दिनों-हफ्तों तक बिना कुछ मांगे अपना काम करते रहेंगे। उतने समय में मालिक चाहे तो विदेश घूम कर वापिस आ जाए।

केंचुए को घर के अन्दर भी पाला जा सकता है। एक प्लास्टिक के छोटे व साधारण डस्टबिन में भी उन्हें पाला जा सकता है। उसके पेंदे में कुछ छेद करें, जिससे एक्स्ट्रा पानी बाहर निकलता रहे। उसे किसी ट्रे आदि के ऊपर रखें, ताकि वहां जमीन पर एक्स्ट्रा पानी न गिरता रहे। उस पानी को पुनः केंचुआ बिन में जरुरत पड़ने पर वापिस डालते रहें, ताकि उसकी पौष्टिकता बर्बाद न होए।

इस किचन फार्मिंग से जहाँ शौक पूरा होगा, और सूक्ष्म तांत्रिक शक्ति प्राप्त होगी, वहीँ पर उससे प्राप्त जैविक खाद से गमले के फूलों का अच्छा विकास होगा, और किचन गार्डन में भी भरपूर सब्जियां उगेंगी।

वैसे तो ज्यादातर केंचुआ पालन खुले में किया जाता है। खुला खेत होता है। उस पर कोई छत नहीं होती। उसमें पैदावार भी ज्यादा होती है, और केंचुए की बढोत्तरी भी अधिक होती है। परन्तु उसकी खाद की गुणवत्ता कम होती है। उसके बहुत से पोषक तत्त्व पानी के साथ इधर-उधर बह जाते हैं, और हवा-धुप से उड़ भी जाते हैं।

केंचुए खुली जगह में भी केवल नमी वाली मिट्टी के अन्दर ही इधर-उधर भाग सकते हैं। वे जमीन के ऊपर नहीं भागते, और न ही सूखी मिट्टी में घुसते हैं। यदि नीचे पथरीली जमीन हो, तो भी वे नीचे नहीं भाग पाते। वैसे वे थोड़ी दूर ही गए होते हैं, छुपने के लिए। खाद हटाने की हलचल से डरकर वे नीचे की मिट्टी में घुस जाते हैं। जब नया जैविक पदार्थ वहां डाल दिया जाता है, तब वे 1-2 दिन में फिर से मिट्टी से ऊपर चढ़ जाते हैं।

एक जगह मैंने देखा कि एक 60 डिग्री की खड़ी ढलानदार सतह पर पत्थरों का कच्चा डंगा लगा हुआ था। वह जगह पशुशाला के एकदम बाहर थी। इसलिए अन्दर का सारा गोबर व अन्य जैविक अपशिष्ट जब बाहर फेंका जाता था, तो उस ढलान पर इकट्ठा हो जाता था। इससे वहां एक बड़ा सा ढेर बन जाता था। उसमें अनगिनत केंचुए होते थे। वे जल्दी से सारे कच्चे माल को खाद में बदल देते थे। जब उस खाद को हटाया जाता था, तब वे नीचे पत्थरों के बीच में घुस जाते थे। उन पत्थरों के बीच के छेद नमीदार व मुलायम खाद से भर हुए थे, जिसके नीचे नमीदार व मुलायम मिट्टी होती थी। जब नया कच्चा माल फिर से उस खाली सतह पर आ जाता था, तब वे पुनः भीड़ में ऊपर आकर सक्रिय हो जाते थे, और उसे जल्दी ही ठिकाने लगा देते थे।

उन बर्बाद होने वाले तत्त्वों में नाईट्रोजन सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण होता है। उसकी कमी पौधों की पैदावार पर सबसे अधिक प्रतिकूल असर डालती है। खाद की गुणवत्ता चेक करने का सिस्टम अभी भारत में ठीक ढंग से नहीं पनपा ही। इस वजह से खुले स्थान में बनी खाद का मूल्य भी बंद स्थान में बनी खाद के बराबर ही मिलता है। यही कारण है कि लोग बंद फार्म को खोलने से कतराते हैं। बंद फ़ार्म को बनाने में निवेश भी अधिक करना पड़ता है, और उसमें खाद भी कम बनती है। यद्यपि उसमें बनी खाद की गुणवत्ता उच्च कोटि की होती है। इसी तरह कई स्थानों पर तो लोग निकासी नालियों (ड्रेनेज पाईप्स) की गन्दगी को सुखा कर व उसे पीस कर केंचुआ खाद में मिला लेते हैं। इसकी जांच की सुविधा अधिकाँश स्थानों पर नहीं है। कहीं पर है, तो बहुत महँगी है। ग्राहक भी इस मामले में जागरूक नहीं हैं। इससे भी असली खाद-निर्माता हतोत्साहित हो जाते हैं। यद्यपि उपरोक्त छोटा केंचुआ खाद यूनिट शौक पूरा करने के लिए और दिव्य तांत्रिक शक्ति प्राप्त करने के लिए सर्वोत्तम है।

कई लोग सोचते हैं कि केंचुआ खाद चमत्कारी ढंग से काम करती है। वास्तव में चमत्कार तो रासायनिक खाद से ही दीखता है, यद्यपि वह बाहर-२ से ही होता है, थोड़े समय के लिए होता है, और पर्यावरण की भारी कीमत पर होता है। केंचुआ खाद तो धीरे-२ व सम्पूर्णता के साथ असर करती है। केंचुआ खाद मिलाने से रेतीली मिट्टी में भी चिकनी मिट्टी के गुण आ जाते हैं, क्योंकि केंचुआ खाद में चिकनाहट होती है। इसी तरह, ज्यादा चिकनी मिट्टी भी केंचुआ खाद डालने से अतिरिक्त चिकनाई को खो देती है। ऐसा इसलिए होता है, क्योंकि केंचुआ खाद के कण चिकनी मिट्टी के कणों के बीच में पक्के बैठ जाते हैं, और उन्हें जुड़कर ढेला बनाने से रोकते हैं। ऐसा माना जाता है कि इसमें ऐसे जैव रसायन भी होते हैं, जो पत्थरों को मिट्टी में बदलने में सहायता करते हैं। ऐसा भी माना जाता है कि केंचुए के पेट में हवा की नाईट्रोजन को फिक्स करने वाले कीटाणु भी काम करते हैं। ऐसा इसलिए है, क्योंकि उनके पेट में निर्वात (एनएयरोबिक)/वायुरहित परिस्थिति होती है। नाईट्रोजन फिक्स करने वाले कीटाणु ऐसी ही परिस्थिति में पनपता है। वैसे तो उनके पेट में और भी विभिन्न श्रेणियों के लाभदायक कीटाणु होते हैं। उनसे ऐसे होरमोन भी बनते हैं, जो पौधों की बढौतरी में सहायक होते हैं। उनकी विष्ठा से होते हुए वे खेत की मिट्टी में घुल-मिल जाते हैं, और वहां पर लम्बे समय तक बहुत से लाभदायक काम करते रहते हैं। तभी तो कहते हैं कि केंचुआ खाद पूरी तरह से सूखने नहीं देनी चाहिए। उसमें हलकी सी नमी रहनी चाहिए। इसलिए स्टोर करते समय उस पर कई बार पानी का हल्का छिड़काव भी करना पड़ता है, खासकर गर्मियों में। खेत में मिलाते समय उसकी मिट्टी में भी नमी होनी चाहिए। खाद को एकदम से मिट्टी में मिला लेना चाहिए। ऐसा हल चला कर भी किया जा सकता है। यदि वह खेत की सतह पर पड़ी रहेगी, तो वहां पर सूख जाएगी। उससे कीटाणुओं की हानि तो होगी ही, उसकी नाईट्रोजन भी हवा में उड़ जाएगी। यूरिया से भी नाईट्रोजन मिलती है, पर वह रासायनिक होने के कारण हानिकारक होती है।

जिस प्रकार योगी दत्तात्रेय के चौबीस गुरुओं में बहुत से गुरु निर्जीव पदार्थों (हवा, बादल आदि) के रूप में थे और बहुत से गुरु छोटे जानवरों (मछली आदि) के रूप में थे, उसी प्रकार मेरे गुरु केंचुए क्यों नहीं हो सकते? केंचुओं से मुझे कई प्रकार की शिक्षाएं मिलीं। एक शिक्षा यह भी मिली कि अपना खाना चबा-२ कर खाना चाहिए। दरअसल केंचुआ खाद में जो चिकनाहट व नमी होती है, उसमें उसके मुंह से निकली लार का मुख्य योगदान होता है। इसका अर्थ है कि यदि हम ज्यादा समय तक मुंह में खाना चबाएं, तो ज्यादा लार भोजन के साथ मिश्रित होगी। उससे वह पाचक अंगों में आसानी से गुजरेगा, जिससे वह ढंग से पचेगा, और साथ में कब्ज भी नहीं करेगा। ऐसा सोचकर मैंने शुरू में रोटी को अलग से आराम-२ से चबा कर खाना शुरू किया। इससे सूखी रोटी की रगड़ से लार अधिक बनता था। फिर दो रोटियों के बीच में थोड़ा सा घी लगाकर उन दोनों को एकसाथ रोल करके खाने लगा। उसके बाद एक गिलास पानी को आराम से पीता था। उससे ज्यादा फायदा महसूस हुआ। चावल को मैं अलग से, सब्जी को अलग से, और दाल को अलग से खाता था। इससे हरेक प्रकार के अन्न का अपना अलग/विशेष व कुदरती स्वाद मिलता था। अंत में थोड़ा व सब कुछ मिश्रित करके खा लेता था। बहुत मजा आता था, और बहुत संतुष्टि मिलती थी। वैसे तो मैं कुण्डलिनी योग भी करता था, जिससे भी कुछ फायदा मिलता था। ऐसा करने से पहले तो मेरा मन अन्न से भरता ही नहीं था कभी। शायद पहले लार ग्रंथियों में अतिरिक्त लार बची रहती थी, जो मन की भूख को मिटने नहीं देती थी।

फ़ार्म में केंचुए कई बार दो-२ के जोड़ों में भी दिख जाते हैं। वे नाग-नागिन की तरह एक-दूसरे से बड़ी ख़ूबसूरती से लिपटे होते हैं। वास्तव में वे प्रजनन कर रहे होते हैं। एक बार कृषि-विभाग के द्वारा लगाए गए कैम्प में मैं बतौर अतिथि बोल रहा था। बीच में मैंने किसान भाइयों को बताया कि केंचुआ खाद फ़ार्म खोलने से मनोरंजन भी होता रहता है, और वे रंग-बिरंगी फिल्मी दृश्य दिखाते रहते हैं। ऐसा सुनकर वे बड़े रोमान्वित होकर हँसने लगे, और कुछ तो तालियाँ बजाने लगे। मेरी उस बात से बहुत से लोग केंचुआ फ़ार्म खोलने के लिए प्रेरित हुए, और उसके लाभ देखकर सभी सोचने लगे कि आजतक उन्होंने उस पर विचार क्यों नहीं किया था। मेरे उस व्यावहारिक व प्रेरक भाषण की सभी उपस्थित अधिकारियों ने भूरी-२ प्रशंसा की थी। मैं उसका पूरा श्रेय अपने गुरु महाराज को देता हूँ।

अब मैं अपनी फ़ार्म की दिनचर्या बताता हूँ। प्रतिदिन तो मैं उसमें काम करता ही नहीं था। २-३ महीने बाद कभी जब खाली चैंबर को गोबर से भरना होता था, तभी २-३ दिन के लिए लगातार गोबर बगैरह ढोना पड़ता था। मुझे हफ्ते भर तक रोजी-रोटी और कमाई के मामले में घर से बाहर रहना पड़ता था। केवल रविवार के लिए ही घर आता था। उस दिन मैं केंचुआ खाद यूनिट का निरीक्षण करता। जरुरत होने पर उसमें पानी डालता, खाद को अलग करता, खाद को छानता, और कच्चा गोबर दूर से ढो कर यूनिट में डालता। मैं तैयार खाद को खेतों में या पोलीहाऊस में डालता। इस तरह से मेरा दिन आराम से, व्यस्तता से और सकारात्मक रूप से बीत जाता। आस-पास के लोग भी मेरी लगन, मेहनत, प्रसन्नता और मेरे सामाजिक मेल-जोल को देखकर प्रसन्न हो जाते। केंचुआ खाद यूनिट से भी इन गुणों के विकास में सहायता मिली थी। शायद उन्हें भी केंचुआ खाद बनाने के लिए अप्रत्यक्ष रूप से प्रेरणा मिलती हो। यद्यपि कुछ झिझक के कारण उन्होंने उस सरकारी योजना का लाभ नहीं उठाया। एक तो आलस के कारण वे उसके लिए कागज़-पत्र ही नहीं जुटा पाते थे। दूसरा, वे समझते थे कि उनकी पशुशाला के बाहर खुले पड़े गोबर के ढेर में केंचुए खुद ही पलते थे, फिर बंद यूनिट बनाने की क्या जरुरत थी। वे उसके फायदे बताए जाने पर भी समझ नहीं पाते थे। तीसरी वजह थी कि वे उस काम को घटिया, कीड़े-मकोड़े वाला काम समझते थे। खैर कुछ भी हो, पर लोग मेरा काम देखकर खुश व खुले-२ से रहते थे। इसका कारण था, केंचुओं की अदृश्य प्रेरणा से मेरा कर्मयोगी बनना। पूरे हफ्ते भर सारा काम वे एक निष्काम कर्मयोगी की तरह करते रहते थे, और फायदा उसका मुझे मिल रहा होता था।

पहले से ही, सप्ताह के जिस दिन मैं घर में रहता था, उस दिन मैं वह काम करना चाहता था, जो केवल मेरा होता पूरी तरह से। वह किसी के सहयोग वाला काम न होता। मैंने परिवार वालों के साथ मिलकर भी बहुत समय काम किया था। पर उस काम की कोई गिनती नहीं होती थी। वह सारा काम परिवार वालों का माना जाता था, मेरा अपना नहीं। वे काम थे, जंगल से लकड़ी, घास आदि लाना; पशु चराना, व खेत-खलिहान के अन्य काम। केंचुआ-खाद के काम को केवल मैं ही करता था। अन्य लोगों को उसमें रूचि नहीं थी। इसलिए लोग उसे मेरा, अकेले का काम मानने लगे, और उसका श्रेय भी मुझे देने लगे। उससे मुझे आगे बढ़ने की प्रेरणा मिलने लगी। अब मेरा सप्ताह का एक दिन केंचुआ खाद यूनिट के काम में ही अक्सर बीतता था। कभी-कभार जब बहुत कम समय बचता था, तब घर वालों की भी मदद कर लेता था।

एक बार मैंने स्वप्न में अपने फार्म के केंचुओं की आत्माओं से मुलाक़ात की। वे शांत अन्धकार की तरह होते हैं। उनके अन्दर एक विचित्र और अंधकारमय उजाला होता है। अपने जीवन के लिए अनुकूल परिस्थितियों के मिलने से उनके इन

आत्म-गुणों में वृद्धि हो रही थी, ऐसा मुझे उस सपने में महसूस हुआ। वे वहां बहुत खुश थे। उन्हें अपने सभी अनुभव एक शांत, हसीं, हलके, दुःख-दर्द से रहित और आनंदमयी सपने की तरह महसूस होते हैं।



भाग-2

पोलीहाऊस खेती-

एक अध्यात्म-मिश्रित भौतिक शौक

मित्रो, पोलीहाऊस फार्मिंग का एक अपना अलग ही क्रेज है। इससे जहाँ शौक पूरा होता है, वहीँ पर खाने को ताजा व जैविक तौर पर उगाई गईं सब्जियां भी मिलती हैं। यदि पोलीहाऊस बड़ा हो, तो सब्जियों को बेचकर अच्छी आमदन भी कमाई जा सकती है। पोलीहाऊस की एक खासियत यह है कि हम उसमें सब्जियों को बिना किसी रासायनिक खाद व कीटनाशक के उगा सकते हैं। इसलिए उसमें उगी सब्जियां स्वास्थ्य के लिए सर्वोत्तम होती हैं। एक योगी के लिए तो वे बहुत बढ़िया होती हैं। वैसे भी योगियों का शरीर और मन बहुत संवेदनशील होते हैं। वे रासायनिक चीजों को एकदम से नकार देते हैं।

हमारे देश भारत की प्राचीन सांस्कृतिक विरासत में भी पौधों को जीवित और देव स्वरूप माना गया है। वृक्ष योनि को भी एक जीव योनी ही माना गया है। आधुनिक भारत के सर जगदीश चन्द्र बसु ने तो बहुत सी ऐसी वैज्ञानिक मशीनें बनाईं, जिन्होंने पेड़-पौधों के जीवन को बारीकी से पकड़ा। उन्होंने बहुत से वैज्ञानिक प्रयोगों से सिद्ध कर दिया कि पौधों में जीवन होता है, और वे भी चलायमान जीव-जंतुओं की तरह बहुत सी भावनात्मक संवेदनाओं को प्रकट करते हैं। इन सभी बातों से सिद्ध हो जाता है कि पोलीहाऊस एक प्रकार से उन जीवधारियों के लिए एक सुविधा-संपन्न घर है, जिन्हें सदियों से बेघर रहना पड़ा है। इस प्रकार से पोलीहाऊस एक उत्कृष्ट प्रकार की देवपूजा या देवसेवा ही है।

दोस्तों, पोलीहाऊस का शौक मुझे तब चढ़ा, जब अक्सर मेरी मुलाकात हि०प्र० के कृषि अधिकारियों से होने लगी। वे मुझे अतिथि किसान-वाक्ता के रूप में विभिन्न कैम्पों में बुलाते रहते थे। उन मामलों में मैं उनसे उनके कार्यालयों में भी मिला करता था। तब कई बार उनके साथ पोलीहाऊस के संबंध में चर्चा हो जाया करती थी। और अधिक छानबीन के लिए मैं इंटरनेट का सहारा भी लेता था। वास्तव में इंटरनेट केवल अतिरिक्त सहायता ही देता है। किसी काम को शुरू करने के लिए किसी मानव-रूपी विशेषज्ञ/गुरु की प्रेरणा की जरूरत तो पड़ती ही है। तभी वह काम हर दृष्टि से पूर्ण फल दे पाता है। हालांकि सीधे तौर पर भी इंटरनेट से ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। खैर, पहले तो मैं पोलीहाऊस को अपनाने से हिचकिचाता रहा। एक विशेषज्ञ ने तो मुझे निरुत्साहित भी किया था। उन्होंने बताया कि पोलीहाऊस चलाने के लिए किसी वैज्ञानिक रूप से दक्ष आदमी की पूर्णकालिक सेवा की जरूरत पड़ती है। घर के आम आदमी उसे नहीं चला सकते। वैसे तो वे सच्चाई ही बयाँ कर रहे थे। पर यह भी सच है कि कोई भी आदमी पेट से सीख कर नहीं आता। छोटी शुरुआत ही आगे चलकर बड़े काम का रूप ले लेती है। मैं तो काम-धंधे की खोज में घर से बाहर ही रहा करता था। अपने घर वालों की निपुणता पर मुझे विश्वास ही नहीं हुआ। इसलिए एकबार फिर मैंने सरकार से सब्सीडाईजड पोलीहाऊस के लिए आवेदन करना टाल दिया था।

लगभग छः महीनों के बाद पोलीहाऊस बनाने का सपना फिर से मेरे मन में जागने लगा। मैं फिर से अपने जाने-पहचाने कृषि अधिकारियों से मिलने उनके कार्यालयों में जाने लगा। अनेक प्रकार की किसान-सम्बंधित चर्चाओं के बीच में पोलीहाऊस-सम्बंधित चर्चा भी को भी मैं डाल देता था। पहले मैं पोलीहाऊस किचन गार्डन बनाने के बारे में सोचने लगा। उसका आकार 40 स्कवायर मीटर (10 मीटर बाय 4 मीटर) का था, जो न्यूनतम था। परन्तु वह केवल नर्सरी उगाने के लिए, छोटा व इन्द्रधनुष की तरह गोलाकार था। उसमें तो आदमी सीधा भी खड़ा नहीं हो सकता था। इसलिए वह किचन गार्डनिंग के लिए भी नाकाफी था। दूसरा व उससे बड़ा आकार 105 स्क्वायर मीटर (15 मीटर बाय 7 मीटर)

का था। वह पूरा बड़ा पोलीहाऊस था। वह किचन गार्डन के लिए पर्याप्त था। पर उसमें व्यावसायिक खेती करना मुश्किल था। उससे एक आदमी के गुजारे लायक आमदन नहीं हो सकती थी। एक छोटे व मध्यम अआकार के परिवार के लिए तो उससे ताजा सब्जियों की जरूरत पूरी हो सकती थी। इसलिए कृषि अधिकारियों ने मुझे 250 स्कवायर मीटर (25 मीटर बाय 10 मीटर) का पोलीहाऊस लगाने की सलाह दी। मैं उस समय कोई निर्णय नहीं ले सका। मैंने वह निर्णय भविष्य के लिए छोड़ा। उस समय तो मैंने पोलीहाऊस के लिए आवेदन करना ही उचित समझा। पोलीहाऊस का चुनाव तो आवेदन के सैंक्शन होने के बाद माँगा जाता था। मैंने एक फ़ार्म भरकर आवेदन कर दिया था। यद्यपि उसका नंबर 2-3 साल बाद आया, क्योंकि आवेदकों की लाइन बहुत लम्बी थी।

एकबार मैं एक किसान मित्र के घर गौ-सेवा के कार्य से गया था। वहां पर उस मित्र ने मुझे अपना बड़ा पोलीहाऊस दिखाया। उसकी छत व दीवारों के प्लास्टिक लिफाफों को बंदरों ने बुरी तरह से क्षतिग्रस्त किया हुआ था। शायद इसीलिए मुझे वह बहुत बड़ा लगा। मैं उस जंजाल को देखकर घबरा गया। उसमें बड़े-छोटे अनेक प्रकार के अल्यूमीनियम के पाईप लगे थे। मुझे बंदरों का डर भी सताने लगा। हालांकि कृषि अधिकारियों ने बताया कि बंदरों की समस्या उसे जंगल में और घर से दूर बना कर आती है।

बहुत से पोलीहाऊसों को मैंने देखा भी था, और उनके बारे में पढ़ा-सुना भी बहुत था। परन्तु किसी चीज पर तब तक विश्वास नहीं होता, जब तक उसे खुद करके न देख लो। सबसे अच्छी व व्यावहारिक जानकारी भी तभी मिलती है। खैर, दो साल बाद मुझे कृषि-कार्यालय से फोन आया। मुझे मेरे पोलीहाऊस के सेंक्शन होने की बात बताई गई। साथ में बताया गया कि पोलीहाऊस के मालिक को पांच-सात दिन के, पोलीहाऊस से सम्बंधित प्रशिक्षण के लिए जाना होगा। वह प्रशिक्षण पूरी तरह से निःशुल्क था। उसका आयोजन कृषि विभाग ने ही किया था। वह पोलीहाऊस मैंने अपने चाचा के नाम पर एप्लाई किया हुआ था, जो अधेड़ उम्र के थे। कृषि तो वे पहले से ही करते थे, इसलिए उन्हें पोलीहाऊस फार्मिंग में दिक्कत न आती। मैं उन्हें घर से 2-5 किलोमीटर दूर ट्रेनिंग सेंटर तक छोड़ आया। वहां पर बहुत से किसानों का ग्रुप इकट्ठा हो गया था। उन्होंने ट्रेनिंग का बहुत आनंद लिया। उन्हें वहां का माहौल, शिक्षा पद्धति, खान-पान, रहन-सहन, मित्र-मंडली आदि सभी कुछ बहुत पसंद आया। सभी वस्तुएं व सेवाएं उन्हें उच्च गुणवत्ता की लगीं। वास्तव में वे अशिक्षा के माहौल के कारण कभी घर से बाहर गए ही नहीं थे। ये सभी बातें उन्होंने स्वयं अपने मुख से कही थीं। जब ट्रेनिंग पूरी होने पर मैं उन्हें लेने प्रशिक्षण केंद्र में एक मित्र के साथ पहुंचा, तो बड़ा मजा आया। वह एक विश्वविद्यालय था। चारों ओर बहुत सुन्दर दृश्य थे। हरे-भरे दृश्य थे। साफ-सुथरी सड़कें थीं। बड़े-2 भवनों में सुन्दर व रंगीन चार्ट थे, जिनमें विविध जानकारियाँ दी गई थीं। विभिन्न प्रकार की प्रदर्शनियां जगह-2 पर लगी थीं। खैर, मैंने चाचा को भीड़ में पहचान लिया, जो एक अन्य, परिचित से लग रहे आदमी के साथ खड़े थे। दोनों ने मित्रतापूर्वक रहकर प्रशिक्षण के दौरान बहुत अच्छा समय बिताया था। चाचा ने हम दोनों की मुलाकात करवाई। दरअसल वे एक वैदिक पुरोहित थे। उन्होंने अपने नाम पर अपने पिताजी के लिए एक पोलीहाऊस के लिए एप्लाई किया हुआ था। वे बतौर सरकारी शिक्षक सेवानिवृत्त हुए थे। उन्हें पोलीहाऊस का शौक था, और उसके लिए अपना पूरा समय भी दे सकते थे।

अब समय आया पोलीहाऊस के चुनाव का। अधिकारियों ने पोलीहाऊस के 3 पूर्वनिर्धारित आकार बताए। वे तीन आकार थे, 105 स्कवायर मीटर (15 बाय 7), 250 स्कवायर मीटर (25 बाय 10), व 500 स्कवायर मीटर (50 बाय 10)। इन आकारों से अलग आकार संभव नहीं थे, क्योंकि इन्हीं तीन आकारों की फ्रेमें उपलब्ध होती थीं। खेतों को ही इन आकारों के बराबर के आकारों का होना जरुरी था। मैंने खेतों के आकार को नाप तो लिया था, पर फिर भी संदेह था। इसलिए अधिकारियों ने प्रायोजित कंपनी के आदमी को मेरे खेतों का निरीक्षण करने के लिए भेजा। वास्तव में प्रायोजित कंपनियों की एक लम्बी लिस्ट होती है। जब मैंने विभागीय अधिकारी को ही कंपनी का चुनाव करने के लिए कहा, तब उन्होंने सबसे नजदीकी, प्रसिद्ध व तसल्लीबख्श काम करने वाली एक छोटी कंम्पनी का नाम सुझाया। खैर, उस कंपनी का मालिक अगले दिन ही मेरे घर में पहुँच गया था। 500 स्कवायर मीटर आकार का तो कोई खेत ही नहीं मिला। उसने एक खेत को 250 स्कवायर मीटर के पोलीहाऊस के लिए चिन्हित किया। दो खेतों को 105 स्कवायर मीटर के पोलीहाऊसों के लिए चिन्हित किया, और एक खेत को 40 स्कवायर मीटर के पोलीहाऊस के लिए चिन्हित किया। सभी खेत घर के नजदीक ही थे। वास्तव में कम से कम दो-दो फुट की अतिरिक्त जगह पोलीहाऊस की दोनों ओर की, लम्बाई वाली प्लास्टक-दीवार के बाहर उपलब्ध होनी चाहिए। वह पोलीहाऊस के बाहर इधर-उधर चलने के लिए होती है। दोनों तरफ न हो, तो एक तरफ तो इतनी चलने लायक जगह होनी ही चाहिए। इसी तरह पोलीहाऊस के दरवाजे के आगे भी कम से कम दो फुट के रास्ते की जगह होनी चाहिए। दरवाजे वाली छोटी/चौड़ाई वाली प्लास्टिक-दीवार के विपरीत किनारे वाली दीवार के बाहर तो कम से कम 6-8 फुट की जगह चाहिए होती है। यह इसलिए, क्योंकि वहां पर लम्बी दीवारों के लिफाफों को ऊपर की और फोल्ड करने वाली और नीचे की तरफ अनफोल्ड करने वाली प्रणाली लगी होती है। इससे वह दीवार क्रमशः खुलती व बंद होती है। पोलीहाऊस के क्रेस्ट/शीर्ष/छत के विंडो को खोलने व बंद करने वाली प्रणाली भी वहीँ होती है। खैर, कंपनी के मालिक ने चिन्हित जगहों को सीधा करने, उनके ऊपर के पेड़ों की कटाई-छंटाई करने, और कम पड़ रही जगहों को खोलने के लिए हिदायतें भी दीं। वह हमें ज्यादा से ज्यादा पोलीहाऊस बनवाने की सलाह दे रहा था। शायद वह अपने कमीशन को भी देख रहा होगा। कृषि अधिकारी ने भी अधिक से अधिक पोलीहाऊस एक ही बारी में लगाने को कहा था। उन्होंने बताया कि बहुत से लोग एक पोलीहाऊस लगवाने के बाद जब उसके फायदे समझते हैं, तब यह सोचकर पछताते हैं कि उन्होंने एक से ज्यादा क्यों नहीं लगवाए। फिर से उन्हें एप्लाई करना पड़ता है, जिससे उन्हें लाइन में फिर से सबसे पीछे लगना पड़ता है। इस तरह से उनकी दुबारा बारी आने में सालों लग जाते हैं।

मैंने उस दिन अपने चाचा के साथ विस्तार से विचार-विमर्श किया। दरअसल हमारे गाँव में पानी की भारी कमी थी। वैसे तो हमने मनरेगा की वर्षा-जल संग्रहण योजना के तहत दो बड़े आकार के टैंक पहले ही बनवा लिए थे, फिर भी वर्षा जल की भी तो अपनी एक सीमा होती ही है। मनरेगा के तहत उन टैंकों के निर्माण का वर्णन मैं आगे करूंगा। दूसरी कमी पैसे की थी। हमारे पास उस समय सीमित मात्रा में ही नगद पैसे थे, और अनिश्चित भविष्य के लिए हम किसी से उधार नहीं लेना चाहते थे। एक 105 स्कवायर मीटर के खेत में कुछ जगह को समतल करने की जरूरत थी। हमारे स्वयं के पास समय भी कम था, और उस समय कोई मजदूर आदि भी नहीं मिल रहा था। इसलिए उसे छोड़ दिया गया। नर्सरी लगाने की फिलहाल उस समय हमारे अन्दर सामर्थ्य नहीं थी। इसलिए 40 स्कवायर मीटर का

पोलीहाऊस भी छोड़ दिया। अंत में एक 250 स्कवायर मीटर का और एक 105 स्कवायर मीटर का पोलीहाऊस / खेत चुना गया। दोनों बहुत उपयुक्त स्थान पर थे। वहां पर तेज हवाएं भी नहीं चलती थीं, और धूप भी अच्छी लगती थी। दोनों ही खेत पानी के टैंकों से नीची जमीन पर थे। इसलिए ग्रेविटी से पानी का प्रेशर वहां तक अच्छा बनता था।

अगले दिन मैं चाचा को साथ लेकर कंपनी के दफ्तर में पहुँच गया। मैंने उनसे कंपनी के साथ साझीदारी के लिए बने समझौता प्रपत्र /एफिडेविट पर हस्ताक्षर करवाए। साथ में, लाभार्थी अंश/बेनेफिशियरी शेयर के रूप में कुछ पैसे भी जमा करवा दिए। लाइन में हमारा नम्बर काफी पीछे था, इसलिए पोलीहाऊस फिट करने के लिए हमारी बारी आने में महीने से अधिक का समय लग जाता। मैंने किसी काम के सिलसिले में बाहर जाना था, इसलिए कृषि अधिकारी की सिफारिश लगवा कर 15-20 दिन में ही काम शुरू करवा दिया। कईयों को तो ऊंची पहुँच भी लगानी पड़ा जाती है। तीन-चार दिनों तक कंपनी के कर्मचारी हमारे घर में लगातार काम करते रहे। वे उतने दिनों तक रात को हमारे घर में ही सो जाते थे। वे ओवरटाईम भी लगा रहे थे, क्योंकि दिवाली पास में थी, जिससे वे जल्दी काम से फारिग होना चाहते थे। उनका काम बड़ा तकनीकी व दक्षतापूर्ण होता है। प्लास्टिक की शीट बिलकुल तनी हुई होनी चाहिए, नहीं तो वह तेज हवाओं से फड़ाफड़ा कर फट भी सकती है। जी.आई. पाईप की फ्रेमों पर उसे स्क्रियू से फिक्स किया जाता है। स्क्रियू ड्राईवर मशीन भी आधुनिक थी, जो होल ड्रिल करने के साथ स्क्रियू भी खुद ही लगा कर टाईट भी कर देती थी। सबसे पहले तो जी.आई. पाईप का जाला बनाया जाता है। यह काम वैल्ड करके किया जाता है। इसलिए खेत के नजदीक में बिजली भी उपलब्ध होनी चाहिए। कई कम्पनियां नट-बोल्ट से जोड़कर भी जाला बनाती हैं। इससे पूरे पोलीहाऊस यूनिट को एक खेत से दूसरे में स्थानांतरित किया जा सकता है। वैसे ऐसा करने की जरूरत बहुत कम मामलों में ही पड़ती है। इसका एक नुक्सान यह भी है कि समय के साथ नट-बोल्ट ढीले होते रहते हैं। एक तकनिकी दक्षता यह होनी चाहिए कि दीवारों या छत का कोई स्थान खुला नहीं रहना चाहिए, जो प्लास्टिक शीट से ढका न हो। कई बार ठण्ड में अन्दर हीटिंग देनी पड़ सकती है। इस खुले स्थान से हीट बाहर भाग जाती है। मेरे पोलीहाऊस के एक दीवार के कोने की शीट में आधा फुट का गैप था। मैंने कृषि अधिकारी को फोन करके वह कमी बताई, तो कंपनी का कर्मचारी अगले दिन ही बाईक पर आकर वहां प्लास्टिक शीट का जोड़ लगा गया।

दोस्तों, पोलीहाऊस की बड़ी-२ फ्रेमें जुड़ी-जुड़ाई आती हैं। वे वैसे तो हलकी होती हैं, पर उन्हें ढोना बेढंगा जैसा होता है। वे धनुष के जैसी बड़ी-२ आकृतियाँ होती हैं। हमने 2 नेपाली गोरखों को उन्हें सड़क से खेत तक (लगभग डेढ़ किलोमीटर का सफर) ढोने के लिए लगाया हुआ था। वे मजाक में उन्हें राम-धनुष कहते थे। ढोने की इसी मुश्किल के कारण उन्हें ढोने में जरूरत से ज्यादा समय लगा।

प्लास्टिक शीट का केबिन बन जाने पर अन्दर का काम होता है। मुख्य केबिन से जुड़ा हुआ एक छोटा सा केबिन भी होता है। वह जूते वगैरह बदलने के लिए, दवाई वाले पानी में पैर डुबोने के लिए, कपड़े बदलने के लिए, व औजार आदि रखने के लिए होता है। हम तो एसी कोई विशेष फोर्मेलिटी नहीं कर पाए। हाँ, उसमें एक पानी का 250 लीटर वाला ड्रम जरूर रखा हुआ था। उसे पाईप से भर लेते थे। कई बार वह पानी इधर-उधर की जरुरत में काम आ जाता था। वैसे, सिंचाई तो ड्रिप इरिगेशन से होती थी। उस छोटे केबिन के दोनों और दरवाजा होता है। उसे बंद रखना पड़ता है।

ग़लती से बाहर से आया हुआ कीड़ा-मकोड़ा उसमें कैद हो जाता है, और उसमें पैदा हुई गर्मी से मर जाता है। मुख्य केबिन की लम्बाई वाली, नीचे की दीवार को प्लास्टिक की बारीक छेद वाली जाली से बनाया जाता है। उससे हवा का आना-जाना होता है, और उससे किसी कीड़े-मकोड़े का प्रवेश भी नहीं हो सकता। धरातल के पास की लगभग डेढ़-दो फुट की दीवार पर पोलीशीट ही लगी होती है। वहां जाली नहीं होती। यह इसलिए, ताकि पानी अन्दर न आए। साथ में,, कार्बन डाईआक्साईड गैस भारी होने से नीचे बैठ जाती है, जिसका प्रयोग पौधे अपना भोजन बनाने के लिए करते हैं।

पोलीहाऊस का केबिन बन जाने के बाद उसमें शेड नेट लगाया जाता है। वह एक हरे रंग की जाली होती है, जो ऊपर से आ रही धूप को धीमा कर देती है। इसके नीचे और ऊपर के तापमान के बीच में 10 डिग्री का अंतर होता है। इससे उच्च गर्मी के महीनों में पौधों का बचाव हो जाता है। उसे खोला व बंद किया जा सकता है, खिड़की के परदे की तरह। उसके नीचे स्प्रिंकलर का जाल होता है। वे दरअसल छोटे-छोटे फव्वारे जैसे होते हैं, जो स्थान-२ पर लटके होते हैं। वह जाल पोलीहाऊस की मुख्य पाईपलाईन से वाल्व के माध्यम से जुड़ा होता है। जब उनका वाल्व खोला जाता है, तब उनसे पानी की एक धुंध जैसी बारीक फुहार निकलती है। वह फुहार पोलीहाऊस का तापमान 10 डिग्री तक कम कर देती है। आजकल तो हाईटेक पोलीहाऊस भी बन गए हैं। उनके टेम्प्रेचर सेंसर जब ज्यादा गर्मी को सेन्स करते हैं, तब वे स्प्रिंकलर खूद ऑन हो जाते हैं। फिर जब तापमान सामान्य हो जाता है, तब वे खुद ही बंद हो जाते हैं। इसी तरह से जमीन में पानी की मात्रा को सेन्स करने वाला सेंसर जब जरूरत से कम पानी को सेन्स करता है, तब ड्रिप सिस्टम खुद चालू हो जाता है, और निर्धारित सिंचाई करने के बाद खुद बंद हो जाता है। इस तरह से सभी ओपरेशन ओटोमेटिक चलते हैं। परन्तु ऐसे पोलीहाऊस बहुत महंगे होते हैं, जिन्हें बिजनेसमेन ही फिट करवा सकते हैं।

पोलीहाऊस में जल प्रणाली के रूप में एक मोटा प्लास्टिक का पाईप (लगभग दो इंच मोटाई का) दरवाजे के साथ बिछा होता है, पोलीहाऊस की पूरी चौड़ाई में। उसी से एक कोने में उसी मोटाई का एक पाईप ऊपर की ओर चढ़ता है, जिससे स्प्रिंकल सिस्टम जुड़ा होता है। नीचे वाले पाईप से लगभग एक पतली पाईप पोलीहाऊस की लम्बाई में पूरी बिछी होती है। 2 फुट के गैप पर ऐसी बहुत सी पाईपें एक दूसरे के समानांतर बिछी होती हैं। हरेक पाईप फसल के एक बैड के लिए होती है। वह पाईप पतली, विचित्र व काले रंग की होती है। उसे जितना मर्जी तोड़ो-मरोड़ो, वह टूटती नहीं है। इस तरह से जितनी पाईपें हैं, उतनी ही लाईनें पौधों की लग सकती हैं। उस पाईप की पूरी लम्बाई में लगभग 4-6 इंच के फाँसलों पर एक-एक छेद होता है। वहां से बूँद-२ कर के सिंचाई के लिए पानी गिरता रहता है। लगभग एक सेकण्ड में एक बूँद गिरती है। ओन-ऑफ़ करने के लिए वाल्व/चाबी/नल भी होता है।

अन्दर की मुख्य मोटी पाईप पोलीहाऊस के बाहर लगे फिल्टर यूनिट से जुड़ी होती है। उसमें पानी का प्रेशर नापने वाला गेज भी होता है। फिल्टर यूनिट में डिस्क फ़िल्टर लगा होता है। उसमें एक सिलिंडर (जो लगभग एक लीटर की बोतल के बराबर होता है) के ऊपर पतली प्लास्टिक की डिस्कें (छल्ले जैसीं) एक के ऊपर एक करके टाईट कसी होती

हैं। उन डिस्कों में बारीक धारियां होती हैं। जब वे डिस्कें आपस में जुड़ती हैं, तब उन धारियों के बीच में बहुत पतली सी जगह बनती है, जिसमें से छनकर साफ पानी अन्दर आता है। मैल उन्हीं चकतियों में फंसा रह जाता है। उन्हें साफ करने के लिए सिलिंडर के पीछे का स्क्रियू खोलकर उन्हें बाहर निकला जाता है। फिर बाल्टी आदि के खुले पानी में धोकर उन्हें फिर से फिट कर दिया जाता है।

फिल्टर यूनिट में ही सक्शन यूनिट भी जुड़ा होता है। उससे निकली एक पाईप पानी की बाल्टी में डुबोई जाती है। उस पानी में पूरे पोलीहाऊस के लिए खाद घुली होती है। सक्शन यूनिट बाल्टी से सारा पानी चूस लेता है। वह पानी सिंचाई के पानी के साथ मिश्रित होकर पूरे पोलीहाऊस में लगे ड्रिप से सभी पौधों को बराबर मात्रा में मिल जाता है। परन्तु यह सक्शन यूनिट तभी काम करता है, यदि पानी को बहाने के लिए उसे पीछे से टूलू पम्प से प्रेशर दिया जाए। ग्रेविटी का प्रेशर इतना कम होता है कि उससे सिंचाई तो हो जाती है, पर सक्शन यूनिट काम नहीं करता। हमारा सिस्टम ग्रेविटी से चलता था, इसलिए खाद वाले पानी को हमें हाथ से डालना पड़ता था। वैसे उसकी जरूरत कम ही पड़ी, क्योंकि हम जैविक खाद का ही अक्सर प्रयोग करते थे। वह तो पानी में घुलती नहीं है। फिर भी यदि बहुत ज्यादा उंचाई से पानी आ रहा हो, तब सक्शन यूनिट काम कर जाता है।

हमारे सिंचाई वाले टैंक में इधर-उधर से बहकर आया हुआ गंदा पानी होता था। काई की वजह से उसका रंग भी हरा होता था। यदि उसे सीधा ड्रिप लाइन में डाला जाता, तो उससे ड्रिप के सुराख़ ब्लोक हो जाते। उससे ड्रिप पाईपों को बदलना पड़ता। दरअसल ड्रिप यूनिट के अन्दर बहुत सूक्ष्म नलिकाओं का एक जाल होता है, जिससे पानी धारा में न गिर कर बूँद-२ करके गिरता है, चाहे पीछे से पानी का कितना ही ज्यादा प्रेशर क्यों न हो। उसमें बिलकुल साफ पानी घुसना चाहिए। पानी की गन्दगी की वजह से फिल्टर डिस्क को महीने में एक बार साफ करना पड़ता था। यदि पानी बहुत गंदा हो, तो हर हफ्ते में भी उसे एक बार साफ करते रहना पड़ सकता है।

ड्रिप सिंचाई सिस्टम के बहुत से फायदे होते हैं। इससे पानी केवल पौधों की जड़ों के आस-पास तक ही सीमित रहता है। इससे जहाँ पानी की बचत होती है, वहीँ पर जल में घुलनशील पोषक तत्त्व भी जमीन की गहराई में, व इधर-उधर रिसकर गायब नहीं हो जाते। इससे जड़ों के आसपास पानी का दलदल भी नहीं बनता। इससे वहां की मिट्टी नम, हवादार व भुरभुरी बनी रहती है। वैसी स्थिति में खरपतवार की पैदावर भी कम होती है। दरअसल 10-15 मिनट तक ड्रिप चलने से काफी सिंचाई हो जाती है। लगता तो ऐसा है कि एक-२ बूँद गिर रही है। पर पूरे पोलीहाऊस में जगह-२ पर एक-२ बूँद गिरने से भी बहुत सा पानी बह जाता है। एक बार हाईटेक किसान बनने को बेचैन मेरी नाबालिग बेटी ने उत्सुकतावश और चोरी छिप के ड्रिप सिस्टम से पोलीहाऊस की सिंचाई शुरु कर दी, और ड्रिप को चालू ही छोड़कर घर चली आई। दो घंटे बाद जब उसका पता चला, तब तक टैंक का जलस्तर आधा फुट नीचे चला गया था। सभी ने उसे असली किसान की उपाधि से नवाजा। एकबार मैंने एक ड्रिपर (पाईप में बूँद-२ गिरने की जगह पर फूली हुई गाँठ जैसी जगह) के नीचे एक प्लास्टिक का छोटा डिब्बा 15 मिनट के लिए रखा। उसके पानी को मापा, तो वह 50 मिलीलीटर था। उतना पानी छोटे पौधे के लिए पर्याप्त था। इस तरह से पानी मापा जा सकता है। डिब्बे में हरेक 50-50 मिलीलीटर पर निशान लगाए जा सकते हैं। पौधे के लिए जरूरी पानी की मात्रा इस तरह पूरी की जा सकती है। ग्रेविटी की फ़ोर्स से

जो ड्रिप चलता है, उसमें ड्रिप लाइन के आखिरी छोर पर बूँद गिरने की रफ्तार कुछ कम हो जाती है। हालांकि यह फर्क थोड़ा ही होता है। इसी तरह, यदि जमीन पूरी तरह से समतल न हो, तो उतराई वाले छोर पर ज्यादा पानी इकट्ठा हो जाता है। वहां पर फसल बहुत ज्यादा फैलती है, इसलिए वहां फल कम लगता है, केवल हरियाली ही बढ़ती है। कृषि अधिकारी ने हमें यह पहले ही बताया था, पर हमें विशवास नहीं हुआ था। वह इसलिए, क्योंकि जमीन हमें पूरी तरह से समतल लग रही थी। वास्तव में, वाटर लेवल से स्लोप को नापकर समतल कर देना चाहिए। वैसे तो पोलीहाऊस बनने के बाद भी जमीन को समतल किया जा सकता है।

बाद में मैंने एक पोलीहाऊस वाला स्पेशल व इलेक्ट्रोनिक थर्मोमीटर भी ले लिया था। उससे भी पोलीहाऊस के रखरखाव में काफी मदद मिलती है। वह दिन-रात चलता है, और अधिकतम-न्यूनतम तापमान को भी रिकोर्ड करके रखता है। पोलीहाऊस के ऐसे सभी विशेष सामान मैं एक विशेष दुकान से लेता था, जो पोलीहाऊस का हरेक सामान रखती थी। उस दूकान के मालिक ने मुझसे एक विशेष प्रकार का छोटा स्टूल (पटला) लेने को भी कहा था, जिस पर बैठकर पोलीहाऊस में आराम से निंदाई-गुड़ाई की जा सके। पर मुझे उसकी जरूरत ही महसूस नहीं हुई। वह बूढ़े-कमजोर लोगों के लिए या जिनके घुटनों में दर्द रहता हो, उनके लिए विशेष फायदेमंद था। एक बार मैंने दुकान-मालिक से पूछा कि क्या पोलीहाऊस की प्लास्टिक शीट से प्रदूषण नहीं होता। उन्होंने नहीं में जवाब दिया। उन्होंने कहा कि ये तो पेट्रोलियम के व्यर्थ उत्पाद से बनती है। यदि उनकी प्लास्टिक शीट न बनाई जाए, तभी वे प्रदूषण पैदा कर सकते हैं।

अब पोलीहाऊस में फसल लगाने के बारे में बात करते हैं। हमने लगभग दो इंच ऊंचा व दो फुट चौड़ा बैड बनाया, जो पोलीहाऊस के एक छोर से दूसरे छोर तक पूरी लम्बाई में था। बेड की मिट्टी से सभी छोटे-बड़े कंकड़ बाहर निकाले गए। बहुत सारे कंकड़ निकले, जिन्हें देखकर हैरानी हुई। बाहर बड़ा सा ढेर लग गया था। एक तजुर्बेदार वृद्ध ने कहा कि शाम के समय उस ढेर पर आग जलाते रहने से उसकी मिट्टी बन जाएगी। शायद आग से व बाहर के ठन्डे मौसम से उन्हें गर्म-सर्द का झटका लगता है, और वे कमजोर होकर टूट जाते हैं। पर हमारे पास इतना समय व ईंधन नहीं था। उस पर दो ड्रिप पाईपें एक-दूसरे से लगभग 1 फुट की दूरी पर बिछी होती थीं। उसी एक ड्रिप पाईप के नीचे बिजाई की एक लाइन आ जाती थी। इस तरह से एक बैड पर बिजाई की दो लाईनें आ जाती थीं। दो बैडों के बीच में लगभग 1 फुट चौड़ी खाली जमीन होती थी, जो नीचाई पर होती थी। वह उरे-परे चलने के काम आ जाती थी। हमने सबसे पहले उसमें मटर की फसल लगाई, क्योंकि सर्दियां शुरू ही हो रही थीं। पहले दाने को 1-2 दिन तक भिगो कर फुलाया गया। फिर 3 इंच के फांसले पर दाने बोए गए। इस तरह से एक दाना ड्रिपर बूँद के बिलकुल नीचे होता था, पर अगला दाना दो ड्रिपरों के बीच में आता था (क्योंकि ड्रिपर छेदों के बीच में आधा फुट का फांसला होता था)। इस तरह से वहां पर कुछ कम नमी होती थी। उस पोलीहाऊस की मिट्टी कम रेतीली थी। इसलिए उसमें पानी का उरे-परे का रिसाव अच्छा हो जाता था। ज्यादा रेतीली मिट्टी में एक ही जगह पर पानी जल्दी से नीचे छन जाता है, इसलिए उरे-परे के रिसाव को होने के लिए पर्याप्त समय ही नहीं मिलता। इससे ड्रिपरों के बीच की जमीन में अपर्याप्त नमी रह जाती है। हमारे दूसरे पोलीहाऊस में अधिक रेतीली मिट्टी थी। वहां पर उरे-परे का रिसाव पौधों के लिए तो पर्याप्त था, पर बीज की उगाई के लिए कुछ कम था। बीज की शुरूआती उगाई के लिए ज्यादा नमी चाहिए होती है। इसलिए हमने टैंक से प्लास्टिक

पाईप जोड़कर व फव्वारे से पुराने तरीके से बीज-लाईनों की सिंचाई की। अंकुरण के बाद भी 8-10 दिन तक इसी तरह सिंचाई की। वास्तव में छोटे पौधे की जड़ जमीन में बहुत ऊपर होती है। वहां पर ड्रिप के पानी का उरे-परे का रिसाव नहीं होता। वास्तव में ऊपर के आधे से एक इंच तक की मिट्टी बिलकुल सूखी होती है, हवा वगैरह लगने के कारण। उसके नीचे खोदो, तो चारों तरफ भरपूर व सुन्दर नमी दिखाई देती है। मटर की फसल को कम ही नमी चाहिए होती है। यदि अधिक पानी दिया जाए, तो हरी पत्तियों का झाड़ बेतरतीब फैल जाता है, पर फली बहुत कम लगती है। इसलिए हम हफ्ते में दो बार ही 15-15 मिनट तक के लिए ड्रिप चलाते थे। उसे पानी की अधिक मात्रा केवल फूल, व फली आने के समय चाहिए होती है। बीच में एक बार उसकी गुड़ाई की गई। खरपतवार नाममात्र का उगा था। पौधे नाजुक व बेलदार जैसे होते हैं। उन्हें सपोर्ट देने के लिए 6-6 फुट पर लकड़ी की खूँटियाँ गाड़ी गईं, और उन पर डोरी बाँधी गयी। बाजार में स्पेशल डोरी मिलती है। वह कई सालों तक काम देती है, क्योंकि बारिश-धुप के न होने से वे सड़ती नहीं। फिर बीच-२ में पौधों को उन डोरियों पर ऊपर-२ को पहनाया जाता रहा। केंचुआ खाद तो मैंने शुरू में ही, बेड बनाते समय ही उसमें भरपूर मात्रा में मिक्स की हुई थी। इसलिए बीच में खाद डालने की जरूरत ही नहीं पड़ी।

एक प्रकार से मटर की फसल ओरगेनिक ही होती है। वह कीटनाशक व रासायनिक खाद की मांग नहीं करती। उसकी जड़ों में हवा की नाईट्रोजन से यूरिया बनाने वाले कीटाणु निवास करते हैं। इसलिए यह फसल मिट्टी की उर्वरकता को भी बढ़ाती है। पानी की कमी में भी यह हो जाती है। दोनों पोलीहाऊसों से हमने लगभग 10000 रूपए के मटर बेचे।

गर्मी आने पर चाचा ने उसमें लाल-पीली शिमला मिर्च लगाईं। उसमें बिमारी शायद पनीरी के अन्दर ही नर्सरी फ़ार्म से आ गई थी। बहुत से कीटनाशकों का स्प्रे करने पर बीमारी कुछ थमी, पर पैदावार बहुत घट गई थी। गर्मी के गर्म दिनों में शेड नेट को चढ़ा दिया जाता था। उससे गर्मी तो घट जाती थी, पर साथ में पौधों को मिलने वाली रौशनी भी बहुत घट जाती थी। उससे पौधे एकाएक लम्बाई पकड़ते थे, पर बहुत पतले होते थे। पत्ते भी उनमें कम और मुरझाए जैसे होते थे। उनको भी खूंटियों व प्लास्टिक डोरी से सपोर्ट दी गई। कुल मिलाकर ज्यादा मेहनत को देखते हुए पर्याप्त आमदन नहीं हुई। मैंने सलाह दी कि ऐसी सब्जी की बजाय मूली, खीरा, धनिया आदि फसलों को लगाना चाहिए। पर चाचा को शायद पुराने समय से लेकर शिमला मिर्च उगाने का अनुभव व चस्का था, इसलिए वे उसे लगाते रहे। पोलीहाऊस के अन्दर उगाई गई शिमला मिर्च तो बाहर खुले में उगाई उसी फसल से भी कम आमदन दे रही थी। विशेषज्ञ कहते हैं कि एक बार उसमें बीमारी लगने पर तीन साल तक उस खेत में दुबारा शिमला मिर्च नहीं लगानी चाहिए। कई बार तो सारी मिट्टी को दवाई से भी ट्रीट करना पड़ता है। कई बार तो मिट्टी को ही बदलना पड़ता है। यह तो बहुत महँगा तरीका लगा। एक बार योजना बनी कि पोलीहाऊस में पपीता उगाया जाए। पर तभी मैं अपने काम के सिलसिले में घर से बहुत दूर चला गया। इसलिए उसके बाद मेरे चाचा उसमें अपने हिसाब से फसल लगाते रहे, और अपनी मर्जी का आनंद उठाते रहे।

पोलीहाऊस की सुरक्षा का भी बखूबी ध्यान रखना पड़ता है। हवा के तूफान के समय या तो उसे पूरा बंद रखो, या पूरा खुला रखो। यदि वह आंशिक रूप से खुला हो, तो उसमें हवा घुस जाती है, जो उच्च दबाव पैदा करके प्लास्टिक कवर को फाड़ सकती है। वैसे तो उसे पूरा बंद करना ही ज्यादा फायदेमंद रहता है। इसलिए मौसम विभाग से मौसम की

एडवांस जानकारी भी लेते रहना चाहिए, और तूफान की संभावना होने पर सतर्क हो जाना चाहिए। चेतावनी के दिनों में उसे पूरा बंद करके ही रात को सोना चाहिए। पोलीहाऊस को दूसरे नंबर का नुक्सान तेज धुप से पहुंचता है। धुप की यू.वी. रेडिएशन उसका क्षरण करती है। तीसरा नुक्सान गर्म-सर्द (पाला लगना) से होता है। मैदानी भागों में कम से कम 5 साल तक का जीवन होता है पोलीहाऊस का। पहाड़ों में धुप कम तीखी होती है, इसलिए वहां कम से कम 10 साल तो चल ही पड़ता है। इसी तरह, उसके दरवाजे में ताला वगैरह भी लगा रहना चाहिए, ताकि उसमें बच्चे या चोर-उचक्के न घुसे। सर्दियों में, पोलीहाऊस को दिन में थोड़ी देर खोलना भी जरूरी होता है, ताकि शुद्ध हवा अन्दर जा सके, और अशुद्ध हवा बाहर आ सके, क्योंकि पौधे भी हमारी तरह ही सांस लेते हैं।

एक मानव-शरीर से पोलीहाऊस की दार्शनिक तुलना

दोस्तों, आत्म-प्राप्ति के लिए उतनी ही आवश्यक अनुकूल परिस्थितियों की अधिकता चाहिए होती है, जितना कि किसी ग्रह पर जीवन का समर्थन करने के लिए आवश्यक है। इसके अलावा, सांसारिक तरीकों से आत्म-बोध (अलग-अलग प्रभावशीलता के साथ) एक ही जीवन में संभव नहीं है। यह एक बहु-जीवन घटना है। योग ने इस प्राकृतिक घटना की वैज्ञानिक रूप से नकल की है, और इसे एक कृत्रिम या एक जीवन की घटना बना दिया है। यह उसी तरह से है, जैसे बारिश के लिए जिम्मेदार प्राकृतिक अनुकूल परिस्थितियों को कृत्रिम रूप से बनाया जाना असंभव है, लेकिन पॉलीहाउस बनाने से वर्षा पर निर्भरता के बिना, पौधे के जीवन के लिए वांछित स्तर पर नमी बनाए रखने का हमारा उद्देश्य हल हो जाता है।

प्रिय दोस्तों, यह पानी अमृत है, जिसकी सचेतन जीवन/आत्मा के लिए पूरी तरह से परिपक्व होने के लिए आवश्यकता है। पतंजलि का "योगाश्चित्तवृत्तिनिरोधः" (मन का पूर्ण दमन, व्यक्त व अव्यक्त दोनों, ही योग है) भी इसी बात के समान है। वही सांसारिक लोगों की अहंकारहीनता है। अलग-अलग वक्रता के साथ एक ही सक्रिय सिद्धांत है। छोटी सांसारिक अनुभूतियाँ छिटपुट और अक्सर होने वाली बारिश की तरह होती हैं। बारिश के फ़िल्टर किए हुए पानी के संग्रह का गड्ढा अवचेतन मन होता है। बादलों / संवेदकों को संशोधित करने की कोशिश किए बिना (जैसे कि यह असंभव या मूर्खतापूर्ण है) आंखों और कानों की छतों के माध्यम से हलकी वर्षा की बौच्छारों का संग्रहण किया जाता है। अन्य इंद्रियां एक डायवर्टिंग वाल्व की तरह होती हैं, जो फिल्ट्रेशन टैंक की आपूर्ति को बंद कर देती हैं, और गंदे पानी को सीधे उच्च मस्तिष्क केंद्रों में ले जाती हैं, जिससे वहां पर नमी (सनसनी/संवेदना) लगातार बदलती रहती है, जिससे जीवन को नुकसान पहुंचता है। मस्तिष्क के विजुअल/दर्शन और ऑडिटरी/श्रवण केंद्र फिल्ट्रेशन टैंक हैं, जहाँ बुरी चीजें फ़िल्टर की जाती हैं। अष्टांग योग के आसन और प्राणायाम के साथ अंतिम तीन अंग ड्रिप-सिंचाई प्रणाली हैं। "शुद्ध संस्कृत में आध्यात्मिक कथाएँ" 100 hp पंप (सबसे शक्तिशाली) हैं, क्योंकि यह अपनी शक्ति के साथ सुस्त और अशुद्ध मानसिक संवेदनाओं को चुस्त व शुद्ध संवेदनाओं में बदल देता है, ड्रिप चैनलों / तंत्रिका चैनलों के सबसे पतले हिस्से को खोलकर, यहां तक कि अवरुद्ध की गई नलिकाओं को भी खोलकर। पानी / संवेदनाओं को अवचेतन मन से बाहर पंप किया जाता है, और फिर से उससे बची-खुची गन्दगी को फ़िल्टर आऊट किया जाता है। स्वस्थ और स्वच्छ संवेदनाओं के जल-प्रवाह

को सूक्ष्म नाड़ी-रूपी ड्रिप-पाईपों/तंत्रिका तंतुओं के माध्यम से सबसे गहरे और उच्चतम मस्तिष्क केंद्र यानी कि दोनों भौहों के बीच में स्थित बिंदु तक पहुँचाया जाता है। इस प्रकार, साफ नमी (सनसनी/संवेदना) का निरंतर और बिना उतार-चढ़ाव के एक जैसा स्तर हासिल किया जाता है। यह उस केंद्र को जीवित और विकसित रखता है। फसल / चेतना की परिपक्वता के दौरान, पानी के इनपुट को बंद कर दिया जाता है (पूर्ण अनासक्ति) और सिस्टम में सभी पानी / संवेदनाओं को समापत होने की अनुमति दी जाती है। इसका मतलब है, सभी unexpressed/संग्रहीत व अव्यक्त संवेदनाएं व्यक्त हो जाती हैं, और इस प्रकार उस चेतना रूपी जीव के द्वारा खा ली जाती हैं, जो शीर्ष के वातानुकूलित भवन/सहस्रार में विकसित हो रहा है। यह फसल की अंतिम परिपक्वता / सुपर-चेतना अवस्था / समाधि है। इसके बाद, कोई भी पानी (उपलब्ध/व्यक्त और साथ ही संग्रहीत) उपलब्ध नहीं है, इसलिए कोई भी सनसनी/संवेदना (दोनों, होने की भी, और न होने की भी) नहीं रहती, लेकिन परिपक्वता का केवल एक आनंदमय अनुभव महसूस होता है। जल्द ही, फसल की अंतिम कटाई (पूरी तरह से अनासक्ति) होती है, और वही हर्षपूर्ण आनंद पूरी तरह से उस पूर्ण चेतन आत्मा में बदल जाता है, जिसे पानी/संवेदना की आवश्यकता नहीं होती। Unattached/अनासक्त रवैया और अहंकारहीनता POLYHOUSE का कवर / उसे सुरक्षित करने वाला प्लास्टिक शीट का घेरा है। ये यम, नियम और प्रत्याहार अंग हैं। डायवर्ट वाल्व आंखों और कानों के अलावा अन्य इंद्रियों के लिए मिथ्या-नाम है। ये गंदे पानी (अस्वास्थ्यकर संवेदनाओं) के अतिप्रवाह को पैदा करती हैं, जिसके कारण नमी (संवेदना) की अनियमितता पैदा होती है, जिससे चेतना (आत्मा) में अज्ञान का रोग फैलता है। इनका बंद होना ही योग का प्रत्याहार अंग है। दोस्तों, संभवतः पोलीहाऊस के इन्हीं आध्यात्मिक गुणों के कारण मुझे इससे बहुत से आध्यात्मिक अनुभव प्राप्त हुए।

भाग 3

वर्षाजल संग्रहण

एक अध्यात्म-मिश्रित भौतिक शौक

पुस्तक-भाग परिचय

मित्रो, बात उस समय की है जब भारत की नरेगा योजना अपने चरम पर थी। केंद्र से धड़ाधड़ बजट आ रहा था। राज्य सरकारें उसे खर्च नहीं कर पा रही थीं। कुशल कामगारों की किल्लत पहले से ही थी, ऊपर से उनकी मांग बढ़ने से और बढ़ गई थी। इसलिए बहुत सारे गरीब तबके के लोग तो योजना का लाभ ही नहीं उठा पा रहे थे। योजना का पैसा तो काम पूरा होने के बाद मिलता था। पंचायत के जनरल हाऊस में विशेष काम के निमित्त शैल्फ बनाई जा रही थी। वार्ड मेंबर शैल्फ में हरेक परिवार का नाम दाल देता था, ताकि यदि बाद में उनका मन शैल्फ के सैंक्शनड काम करवाने का कर जाए, तो उन्हें अपने काम पहले से ही स्वीकृत/सेंक्शन होए हुए मिले। शैल्फें धड़ाधड़ स्वीकृत भी हो रही थीं। लेखक ने भी नरेगा के तहत एक वर्षाजल संग्रहण टैंक बनाया।

अपने स्वयं के द्वारा महसूस किए गए उपरोक्त व्यावहारिक बिन्दुओं पर प्रकाश डालते हुए लेखक ने इस पुस्तक/पुस्तक-भाग में अपनी आपबीती का वर्णन किया है। आशा है कि पुस्तक/पुस्तक-भाग पाठकों को रोचक लगेगी, और साथ में आवश्यक ज्ञान भी प्रदान करेगी।

मित्रो, मेरा घर एक छोटी सी पथरीली पहाड़ी पर था। वहां की मिट्टी भी रेतीली जैसी थी। इससे बारिश का पानी भी उससे बहुत जल्दी उड़ जाया करता था। धुप भी वहां पर काफी चटकीली लगती थी। सिंचाई के वहां कोई भी साधन मौजूद नहीं थे। खेती का सारा दारोमदार बारिश पर ही था। बुजुर्गों ने मेरे गाँव में बड़ी कठिनाईयों के बीच में एक सीमेंट का बना हुआ पक्का टैंक बनाया हुआ था, और एक मिट्टी की कच्ची जोहड़ बनाई हुई थी। उनमें बरसाती खड्ड का पानी जमा कर दिया जाता था। सर्दियों के कुछ महीनों के लिए खड्ड में नाममात्र का पानी रहता था। उस पानी की बूँद-२ से वे दोनों जल-स्रोत धीरे-२ भरते रहते थे। उससे थोड़ा-बहुत पानी साग-सब्जी, मटर की फसलों आदि के लिए मिल जाया करता था। गर्मियों में तो चारों तरफ सूखा ही सूखा हो जाता था। गर्मी में जो कभी-कभार बारिश होती थी, उससे घर की छत पर इकट्ठे हुए पानी को भंडारण करने की भी व्यवस्था नहीं थी। अकेली व छिटपुट बारिश में उतना पानी तो होता नहीं, जिससे बरसाती खड्ड में पानी चलने लगे। इससे वर्षा जल संग्रहण की महत्ता समझ में आती है। वर्षा जल संग्रहण के अभाव के कारण गाँव के लोग बरसात से ठीक पहले लगाईं जाने वाली टमाटर, शिमला मिर्च आदि नकदी फसलों को नहीं लगा पाते थे। जो थोड़ा-बहुत पुराना पानी टैंक में संचित होता था, उससे कुछ प्रभावशाली लोग ही थोड़ी सी नकदी फसल लगा पते थे। अन्य लोग तो बरसात शुरू होने पर ही नकदी फ़सल उगा पाते थे, जिससे फसल की उत्पादकता बाहुत घट जाती थी। साथ में, खरपतवार को नियंत्रण में रखना भी मुश्किल हो जाता था। वास्तव में बरसाती फसल को बरसात शुरु होने से 15-20 दिन पहले लगा दिया जाता है। इससे जब तक बरसात आती है, तब तक पौधे जमीन से 1-1/2 फुट तक ऊपर उठ जाते हैं। उसमें पानी की कमी के कारण खरपतवार नहीं होता। जब बरसात आती है, तब फ़सल पानी पीकर एकदम से फैल जाती है। खरपतवार भी उगना शुरू हो जाता है, पर वह फसल के फैलाव के नीचे धूप-हवा की कमी से दबा रह जता है, और ऊपर उठ नहीं पाता। यदि बरसात आने पर फसल लगाई जाए, तो खरपतवार ऊपर फैल जाता है, और पौधा नीचे रह जाता है। खरपतवार फसल की सारी खुराक खुद खा लेता है। इससे फसाल की पैदावार बहुत घट जाती है।

बरसाती मक्की को बरसात शुरू होने से 15-20 दिन पहले और यहाँ तक की महीना पहले लगाना भी आसान होता है, क्योंकि उसे बहुत कम पानी की जरूरत होती है। बरसात आने तक 1-2 बारिश से भी उसका काम चल पडता है। दूसरी ओर अधिकाँश नकदी फसलें बाहुत नाजुक होती हैं, और ज्यादा पानी की मांग करती हैं। उसका पौधा ही नर्सरी से उखाड़कर सीधा ही खेत में लगाया जाता है, बीजारोपण नहीं किया जाता। इसलिए उसे नई जगह पर जड़ जमाने के लिए भी लगातार सिंचाई की जरूरत होती है। उसे सुबह-शाम दो बार सींचते रहना पड़ता है। एक पौधे को आकार के अनुसार 100 मिलीलीटर से आधा लीटर पानी लग जाता है। इसलिए 1000 पौधों के लिए लगभग 500 लीटर पानी प्रतिदिन चाहिए होता है। यदि उसे 20 दिनों तक लें, तो कुल 10 से पंद्रह हजार लीटर पानी की जरूरत पड़ती है। इसका मतलब है कि एक मध्यम आकार का पानी का टैंक भरा हुआ चाहिए।

दोस्तों, मेरे घर के नीचे, लगभग 2 किलोमीटर दूर और 200-300 मीटर की खड़ी नीचाई पर एक बारहमासी खड्ड भी बहती थी। एक बार मेरे गाँव सहित कुछ गाँवों ने मिलकर उससे सरकारी सिंचाई जल परियोजना को अमलीजामा

पहनाने की कोशिश की। सारा कागजी काम हो चुका था। बिजली की मशीनें और पानी के पाईप 1-2 दिन में नदी में पंहुचाए जाने वाले थे। तभी लाभ से वंचित दूर-पार के गाँवों के, विरोधी लोगों को इसकी सूचना मिल गई। उन्होंने जल्दी से पंचायत में योजना के खिलाफ प्रस्ताव पारित करके अपने हमदर्द मंत्री को उसे पेश कर दिया। उन विरोधी लोगों ने प्रस्ताव में अजीब किस्म का तर्क पेश किया था। उनका लिखना था कि खड्ड में कम पानी है, और गर्मियों में तो नाममात्र का रहता है। दरअसल ऐसा नहीं था। उस योजना स्थल के नीचे भी खड्ड में एक निजी सिंचाई परियोजना चल रही थी। दरअसल निजी परीयोजना चलाने वाले चाहते थे कि उनकी ओर आने वाले खड्ड में पानी में कोई कमी ना आए। उन्हें निजी परियोजना वालों ने उक्त सरकारी योजना के खिलाफ आस-पास के गाँवों को भड़काया था। गर्मी के एक-आध महीने ही पानी इतना कम होता था कि मिल-बाँट कर काम चलाना पड़ता। परन्तु उन्हें वह भी मंजूर न था। उनकी दूसरी दलील यह थी कि सरकारी सिंचाई योजना से सरकारी पेयजल योजना में पानी की कमी से बाधा पहुँचती, क्योंकि वह खड्ड में निचाई की तरफ थी। पर वास्तव में हकीकत यह थी कि उनकी अपनी निजी सिंचाई परियोजना भी उस सरकारी पेयजल योजना से ऊपर ही बनी हुई थी, और वह उसके बहुत बाद ही बनी थी। उससे होने वाले नुक्सान की वे बात ही करना व सुनना नहीं चाहते थे। ग्रामसभा में तो विरोधी लोग ईर्ष्या व स्वार्थ के वशीभूत होकर चित्र-विचित्र और अड़ियल रवैये वाली बहसें करते थे। उनका मुख्य कुतर्क था कि यदि पानी मिले, तो सबको मिले, चाहे एक-२ लोटा ही क्यों न मिले; और यदि न मिले, तो किसी को न मिले। अजीब सा हठ था। हमने उन्हें यह भी आश्वासन दिया कि उस योजना को धीरे-२ पूरी पंचायत तक बढ़ा देंगे, जिससे मिल-बाँट कर पानी का इस्तेमाल करेंगे। जब खड्ड में पानी काफी होता था, तब तो पूरी पंचायत का भी गुजारा हो सकता था। उस समय बजट कम था, और केवल एक ही वार्ड के लिए स्वीकृत हुआ था। जूनियर इंजीनियर ने भी सर्वे करके बताया था कि खड्ड का पानी एक ही वार्ड के लिए पर्याप्त था, क्योंकि उन्होंने भरी गर्मी में सर्वे किया था। वैसे भी उस साल गर्मी ज्यादा पड़ी थी। सबसे ज्यादा हक़ तो खड्ड के सबसे नजदीक बसे हुए वार्ड का ही सिद्ध होता था, जो हमारा वार्ड था। वैसे भी हमारे वार्ड के लोगों के नाम से खड्ड में घराट और पानी की कूहलें हुआ करती थीं, जो आज भी सरकारी दस्तावेजों में दर्ज हैं। पर विरोधी लोगों के सर पर स्वार्थ व ईर्ष्या की भावना इस कदर हावी थी कि वे कोई भी बात मानने को तैयार नहीं थे। यहाँ तक कि हमारे अति निकट के संबंधी भी इस मामले में मूक स्वरों में हमारे विरोधी बन गए थे। मुंह के सामने उनका कुछ नाटक होता था, और पीठ के पीछे कुछ और। आप सब भाइयों-बहनों को हमारे देश की वोट बैंक पोलिटिक्स का पता ही है। चाहे कितना ही बढ़िया काम क्यों न हो, यदि उससे वोटों का नुक्सान हो रहा हो, तो उसे होने नहीं दिया जाता। इसी तरह वोटों के लालच में घटिया कामों को भी अमलीजामा पहना दिया जाता है। खैर, मंत्री महोदय बहुसंख्यक आबादी के प्रस्ताव को ठुकरा नहीं पाए, और उसे रद्द कर दिया गया, जिससे हमारी परियोजना वोटबैंक की बलि चढ़ गई।

परियोजना के रद्द होने पर उन स्थानीय नेताओं के चेहरे फीके पड़ गए, जिन्होंने उसे लाने के लिए बहुत मेहनत की थी। दूर-पार के बड़े व हमारे हितचिन्तक नेता भी पूरी पंचायत को सामने-२ ही अच्छी डांट पिला देते थे, पर ढीठ विरोधी लोग तो उन डांटों को गन्ने का रस समझ कर ख़ुशी-२ पी जाते थे।

खैर, समय बीतता गया। हमारे वार्ड के लोगों ने कभी भी बदले की भावना नहीं रखी, और सभी सामाजिक कार्यों में पूर्ववत शामिली देते रहे। कई बार आपस में जरूर सम्बंधित अंदरूनी बातें चल पड़ती थीं। पंचायत का हठ तो इतना प्रबल था कि वह कई सालों तक रहा। बाद में भी जब-२ उन्हें हमारे वार्ड के लोगों के जाग जाने की गुप्त सूचना मिलती थी, वे चौकन्ने हो जाते थे, और पीठ पीछे हमारा विरोध करने लग जाते थे। बाद-२ में हमें खुद ही लगने लगा कि हमें उतने पानी की जरुरत नहीं थी, जितने पानी की हम ख्वाहिश रख रहे थे। सूक्ष्म सिंचाई का चलन आरम्भ हो गया था। पोलीहाऊसों व ड्रिप इरिगेशन की अनुदानित योजनाएं सरकारी पटल पर उभरनी शुरू हो गई थीं। उनके लिए तो वर्षा-जल संग्रहण से भी काम चल सकता था। फ्लड इरिगेशन का वह जमाना नहीं रहा था, जब एक खेत में पानी के पूरे तालाब को उड़ेल दिया जाता था। उससे पानी तो खाद-मिट्टी की ताकत लेकर पाताल लोक पहुँच जाता था, और फसल ऊपर-२ ही भूखी-प्यासी रह जाती थी। जिस पानी से सौ लोगों के खेतों की सिंचाई हो सकती थी, उसे एक ही प्रभावशाली आदमी हड़प कर बर्बाद कर देता था। वे दिखावे के धार्मिक बनते थे। बाद में उनका पूरा ध्यान एक बड़े से मंदिर के नवीनीकरण पर लग गया। वह तो ठीक था, पर विकास के अन्य काम भी नहीं रुकने चाहिए थे। उन्हें शास्त्रों की उन बातों की कोई परवाह नहीं होती थी कि पानी को मिल-बाँट कर प्रयोग में लाना चाहिए। तभी तो पुराने जमाने में कुँए, बावलियां आदि पानी के स्रोत सामूहिक होते थे। इसलिए हमें लगने लगा कि अगर उस इरिगेशन स्कीम का विरोध हुआ, तो वह अच्छा ही हुआ। भगवान् जो करता है, वह भले के लिए ही करता है। भगवान आदमी को ऊपर बढ़ाने के लिए ही समस्याएँ भेजता है। हालांकि हमारी वह सिंचाई योजना छोटी ही थी, और बाद में भी उससे सूक्ष्म सिंचाई की जा सकती थी। परन्तु जब हमारा काम वर्षा जल-संग्रहण से चल सकता था, तब हम क्यों खड्ड से पानी को ऊपर उठाने के लिए बिजली की मशीनों की व अन्य साजो-सामानों की फिजूल में बर्बादी करवाते। हमारे वार्ड के लोगों ने भी खेती की बजाय कमाई के अन्य विकल्पों पर ज्यादा ध्यान देना शुरू कर दिया। उससे वे पढ़-लिख कर अच्छी नौकरियां व व्यापार करने लगे, जिससे उनकी आमदनी एक जाने-माने किसान से भी अधिक होने लगी। वैसा देखकर पूर्वोक्त विरोधी लोगों के फीके पड़े चेहरे देखने लायक होते थे।

तब तक नरेगा योजना का दूसरा फेस भी लोगों की समझ में आने लगा था। पहले फेस में तो इसका हमें पता ही नहीं चला। हो सकता है कि पहले फेस में कम बजट का प्रावधान था। दूसरे फेस में तो खुला बजट बंटता हुआ दिख रहा था। हरेक किसान को एक रेन हार्वेस्टिंग टैंक और एक खेत बनाने के साथ उसके पत्थर के डंगे के लिए वित्तीय सहायता देने का प्रावधान था। दोनों में से प्रत्येक के लिए अधिकतम 70 हजार रुपए की वित्तीय सहायता का प्रावधान था। नरेगा योजना के अन्तर्गत नियुक्त टीए/t.a. (तकनिकी सहायक/technical assistant) पंचायत में कार्यरत रहता था। वह हरेक काम का निरीक्षण करके उसकी लागत का अनुमान लगाता था, और उसी के अनुसार पेमेंट करता था। किसी को 60 हजार, तो किसी को 50 हजार की पेमेंट होती थी। 70 हजार की अधिकतम राशि तो उत्कृष्ट कार्य के लिए ही स्वीकृत होती थी। हमने जो टैंक बनाया , वह लगभग 30 हजार लीटर केपेसिटी का था। उस पर 1 लाख बीस हजार रूपए का खर्च आया था। उसके लिए 70 हजार रूपए नरेगा से मिले, और शेष 50 हजार हमने अपनी जेब से लगाए। वास्तव में शुरू में काम के लिए सारा पैसा अपनी ही जेब से लगाना पड़ता था। कई बार मजदूरी (जॉब कार्डधारियों के बैंक अकाऊंट में हस्तान्तरित) के नाम पर थोड़ी पेमेंट बीच-२ में किश्तों में मिल जाती थी, यदि कागज पूरे होते थे तो,

पर वह बहुत कम होती थी। उससे गरीब लोगों को खासी दिक्कत का सामना करना पड़ता था। उनके पास अपना पैसा होता नहीं था काम शुरू करवाने को। न ही कोई उन्हें उधार देता था, उनकी गरीबी को देखकर। क्योंकि जिससे पैसा वापिस लौटने की उम्मीद कम हो, उसे कोई आदमी कर्ज नहीं देना चाहता। बैंक भी तो अक्सर ऐसा ही करते हैं। इससे ऐसा होता था कि योजना का आधिकांश लाभ अमीर लोग ही ले पा रहे थे। होना यह चाहिए था कि शुरू में ही उन्हें योजना से पैसा मिल जाना चाहिए था, ताकि वे काम करवा पाते। फिर भी, बहुत से गरीब लोग इधर-उधर से जुगाड़ कर लेते थे। नरेगा योजना के अंतर्गत संसाधनों की बरबादी भी बहुत हुई। बहुत से लोग केवल योजना का पैसा बटोरने में ही लगे हुए थे, उन्हें काम से कोई मतलब नहीं होता था। वे दिखावे के लिए और बाहर-२ से लीपापोती करके अपने काम का अच्छा निरीक्षण करवा लेते थे। मुझे नहीं लगता कि वह कामचलाऊ संरचना काम करती थी। अगर काम करती थी, तो 1-2 साल ही उसके चलने की उम्मीद होती थी। बहुत से काम गुणवत्ता के पैमाने से काफी दूर होते थे। पानी के टैंक शुरू में ही लीक कर जाते थे। मैंने तो 10 टैंकों में से 2-3 टैंक ही ऐसे देखे, जो गुणवत्ता के मानकों पर खरा उतरते थे, और लीक नहीं करते थे। इसकी मुख्य वजह थी, लोगों के द्वारा सरकार द्वारा तय बजट में से अपने लिए नकद पैसे बचाने की कोशिश करना। यदि 70 हजार रुपए सरकार से प्राप्त करने होते थे, तो उसके अनुसार लगभग 35 हजार लीटर पानी की क्षमता वाला टैंक बनाना जरूरी था। तभी तकनीकी सहायक उसके लिए 70 हजार रुपए की राशि प्रदान कर सकता था, क्योंकि आगे उसकी भी जवाबदेही तय होती थी। सीधी सी बात थी कि इतनी क्षमता का गुणवत्तापूर्ण टैंक बनाने के लिए कम से कम 1 लाख 20 हजार रुपए की आवश्यकता पड़ती थी। हमने खुद इस आकार का टैंक इस रकम में बनवाया था, जैसा मैंने पहले भी बताया। अब अधिकाँश लोगों के द्वारा अपने पास का पैसा लगाना तो दूर, वे तो सरकार द्वारा देय 70 हजार रुपए में से भी कुछ पैसे अपने लिए बचाने की फिराक में रहते थे। वे लगभग 50-60 हजार रुपए लगाने के पक्ष में, और अपने लिए 10-20 हजार रुपए बचाने के पक्ष में रहते थे। अब आप ही सोचें कि यदि 1 लाख 20 हजार रुपए से निर्मित होने वाला टैंक 50-60 हजार रुपए में बनाया जाए, तो उसमें गुणवत्ता कहाँ से आ सकती है। इसलिए वे घटिया सामग्री का प्रयोग करते थे, उचित रेशो से कम सीमेंट का इस्तेमाल करते थे, घटिया निर्माण तकनीक का प्रयोग करते थे, अकुशल-सस्ते कामगारों की सेवा लेते थे, और तकनीकी सहायक को अपने वश में करने की कोशिश करते थे। कई नेता प्रकार के लोग तो ऊंची सिफारिशें भी लगवाते थे। बाहर से तो तकनीकी सहायक को वह टैंक भरा-पूरा दीखता था, पर वह अंदरूनी गहराई में ज्यादा नहीं जा सकता था। उसके पास एक ही समय में वैसे ही दर्जनों कामों की निगरानी की जिम्मेदारी होती थी। कई बार तो कुछ घोटालेबाज लोग पकड़ में भी आ जाते थे, जिससे वह उनके लिए देय राशि में कटौती कर देता था। पर जो गुणवत्ता गई, वह तो गई। संसाधनों की भी जो बर्बादी होनी होती थी, वह भी तब तक हो चुकी होती थी। इससे सिद्ध होता है कि देश के विकास के लिए देश-प्रेम/समाज-प्रेम की भावना कितनी महत्त्वपूर्ण है। काम की घटिया गुणवत्ता के लिए दूसरा मुख्य कारण, जैसा मैंने पहले बताया है, काम के शुरू में सरकारी धनराशि का उपलब्ध न होना होता था। इससे लोगों को इधर-उधर से थोड़ी-बहुत रकम उधार लेकर काम चलाना पड़ता था। इससे भी गुणवत्ता में कमी रह जाती थी। तीसरी वजह यही थी कि काम के लिए बजट का निर्धारण कम रखा गया था। उस सीमित बजट में गुणवत्तापूर्ण काम नहीं हो सकता था। पहाड़ों में तो ऐसा असंभव ही था, क्योंकि पहाड़ों में वस्तु-निर्माण का खर्चा मैदानों की अपेक्षा अधिक होता है। अधिकाँश अतिरिक्त खर्चा तो

दूरदराज के क्षेत्रों तक माल की ढुलाई के खर्चे के रूप में होता है। योजना में बेशक थोड़े ही कामों का प्रावधान होता, पर वे गुणवत्तापूर्ण होने चाहिए थे।

दोस्तों, जल की समस्या आज विश्व की मूलभूत समस्या है। हरेक परिवार को चलाने के लिए जल की विशेष भूमिका होती है। उसके बिना परिवार अधूरा लगता है। जल की जरूरत हरेक काम में पड़ती है। यहाँ तक कि स्वच्छतापूर्वक शौच जाने के लिए भी भरपूर जल चाहिए होता है। हमने तो कभी उसके लिए भी वर्षा जल संचय के बारे में नहीं सोचा था। ऐसा नहीं था कि हमारे परिवार में आर्थिक तंगी थी। पैसों की दरकार वाले बहुत से काम हमने करवाए, पर वर्षा जल संचय की तरफ कभी हमारा ध्यान ही नहीं गया। उसका हमने कभी महत्त्व ही नह्हीं समझा। हम पानी के लिए पूरी तरह से सरकार के ऊपर आश्रित थे। नेताओं के सहयोग से बुजुर्गों ने एक छोटी सी उठाऊ पेयजल परियोजना लगवाई हुई थी। उसी से सब लोग अपना काम चलाते थे। उसका पानी पर्याप्त नहीं होता था, इसलिए लोग अक्सर शिकायत करते रहते थे। गर्मियों के दिनों में तो बहुत कम पानी छोड़ा जाता था। ज्यादा बारिश के दिनों में खड्ड के पानी में गाद की समस्या के कारण मशीनें बंद कर दी जाती थीं। कई बार मशीनें ख़राब पड़ जाती थीं। कभी पाईप टूट जाते थे। एक सबसे ऊंची पहाड़ी के ऊपर एक छोटा सा टैंक बना था, जहाँ तक लगभग 500 मीटर की सीधी उतराई की दूरी पर खड्ड से बिजली के पम्प द्वारा पानी चढ़ाया जाता था। उस टैंक से ग्रेविटी-पाईप के माध्यम से हरेक गाँव तक पानी पहुँचता था। पहले तो एक गाँव में एक ही नल होता था। बाद में हरेक परिवार अपने लिए निजी वाटर-कनेक्शन लेने लगा। उससे पानी की बर्बादी बढ़ गई, जिससे पानी की कमी और अधिक विकराल हो गई। आस-पास की पंचायतों की नजरें भी हमारी उस छोटी स्कीम के पानी पर पड़ी रहती थी। वे भी अपनी नेतागिरी लगाकर उस पानी को अपने यहाँ ले जाने की जुगत लड़ाते रहते थे। फिर तो हमारे लिए नाममात्र का ही पानी रह जाता। हैरानी की बात है कि वे आसपास की पंचायतें हमारे खड्ड के कैचमेंट एरिया में नहीं आती थी। इसका मतलब है कि उन पंचायतों में बरसा हुआ पानी हमारी खड्ड में नहीं आता था,बल्कि दूसरी खड्ड में चला जाता था। वे अपनी खड्ड से अलग से पानी चढ़ा सकते थे। वैसे भी उनके पास पहले से ही अपना काफी पानी मौजूद था। वे तो अपने खेतों की सिंचाई भी करते थे। फिर भी हमारे देश की राजनीति पता नहीं कब क्या करवा दे। इतना सब होने के बाद भी हमारी पंचायत के लोगों ने अपने घर-आँगन में एक भी वर्षा-जल संग्रहण टैंक नहीं बनवाया था। वे उसे पैसे की फिजूलखर्ची मानते थे। इस मामले में सरकारी योजना की तारीफ करना चाहूंगा। वह किसी विशेष महत्त्वपूर्ण काम के लिए होती है, जिसे लोगों ने ठन्डे बसते में डाला होता है। जब लोग उस योजना से हुए काम के महत्त्व को समझते हैं, तब वे खुद भी शौक से व अपने खर्चे से उन कामों को करने लग जाते हैं। फिर सरकारी योजना की कोई जरूरत नहीं रहती, क्योंकि उसका मकसद पूरा हो चुका होता है।

दोस्तों, नरेगा योजना से मैंने दो टैंक बनवाए, एक अपने नाम से, और एक अपने भाई के नाम से। दोनों का राशन कार्ड अलग-२ था, इसलिए दोनों का परिवार अलग-२ माना गया। उस योजना से एक परिवार के लिए केवल एक वर्षा जल संग्रहण टैंक के ही निर्माण का प्रावधान था।

एक टैंक लगभग 30-35 हजार लीटर का था, जैसा मैंने पहले भी बताया है। वह हमारे घर के दरवाजे के बाहर ही बिलकुल आँगन में बना था। दरअसल, आँगन का वह स्थान दो अलग-२ परिवारों के बीच में था। वह मिट्टी व घास से

भरा रहता था। बाकी दोनों तरफ का पूरा एरिया पक्का था। बच्चे भी वहां खेलते समय मटियामेल जैसे हुए रहते थे। वह स्थान मुझे टैंक निर्माण के लिए सर्वोत्तम लगा। वह जगह भी पक्की व पथरीली थी, इसलिए वहां बना टैंक कभी लीक न करता। परिवार के कुछ अन्य लोगों ने उसके नीचे एक कच्ची जैसी ढलानदार जगह पर टैंक निर्माण का सुझाव दिया। उन्होंने कहा कि उस पर बने टैंक की छत के ऊपर पशुओं को भी बंधा जा सकता था। तीसरे समूह ने खड़े ढाक में पत्थरों का दंगा लगवाकर टैंक बनाने का सुझाव दिया। काफी विचार-विमर्श हुआ। मैंने मकान के आँगन में टैंक बनाने के बहुत से फायदे गिनाए। यह भी बताया कि दोनों परिवारों के बीच बर्बाद हो रही जगह का सही इस्तेमाल हो जाएगा। सर्दियों में वहां अच्छी धुप आती थी, और गर्मियों में वहां ठंडी व मीठी हवा चलती थी। ऐसा इसलिए था क्योंकि वह जगह दो तरफ से बिलकुल खुली हुई (बेरोक-टोक) थी, और तीसरी तरफ आधी खुली हुई थी। उसके आधे हिस्से पर दूसरे परिवार का मकान था। वहां से जो उरे-परे का खुला, रौशनी वाला और हरा-भरा नजारा दिखता था, वह उस जगह की एक अलग ही खूबसूरती थी। मुझे सबको समझाने के लिए बहुत बोलना पडा। अंततः सबने ख़ुशी-२ व बेझिझक मेरी सलाह मान ली। यही लोकतंत्र का तकाजा होता है। उस आँगन के कोने में एक रबर प्लांट का पेड़ था, जो आज भी है। वह आँगन के कोने में आज भी बहुत खूबसूरत लगता है। आँगन को ऊपर-२ से खोदने पर चारों तरफ उस देव-वृक्ष की जड़ों का बोलबाला था। वे जड़ें वहीँ तक जाल बनाती हुई सीमित थीं, जहां तक कच्ची मिट्टी थी। नीचे के पथरीले भाग में एक भी जड़ नहीं मिली। पथरीले भाग की जैसे-२ गहराई बढ़ती जा रही थी, वैसे-२ उसकी सख्ती भी बढ़ रही थी। झब्बल के एक बार के वार से खाने लायक मिट्टी निकालना भी मुश्किल हो गया था। हमें उसे खोदने के लिए गोरखा लेबर लगनी पड़ी। गोरखा एक जानी-मानी व बहादुर नेपाली बिरादरी है। 4-5 गोरखे पूरे दिन भर उसमें औजारों की टका-टक लगा रखते थे। उन्हें तो देखकर भी थकान होने लगती थी। लगता नहीं था कि टैंक की गहराई साढ़े छह फुट तक हो जाएगी, पर उन्होंने यह करके दिखाया। वैसे शुरू में हमने स्थानीय लोग भी काम पर लगाए थे, जिनके पास नरेगा के जॉब कार्ड भी थे। पर वे तो कुछ ही दिनों में हाथ खड़े करके भाग गए थे। फिर गोरखा लोगों को जॉब कार्ड होल्डर के बैंक अकाऊंट से पैसे निकलवा कर दिहाड़ी देनी पड़ी। जॉब कार्ड होल्डर की डेली अटेंडेंस लगा हुआ मस्ट्रोल हर महीने पंचायत में जमा करवाना पड़ता था। यह डर भी रहता था कि यदि कोई काम की इंस्पेक्शन पर आए, तो क्या जवाब देंगे। इसके लिए 2-3 जोबकार्ड होल्डर भी काम पर लगा कर रखने पड़ते थे, ताकि उन्हें दिखाया जा सके। मेरी दो चाचियां और एक चाचा यह काम कर देते थे। वे आराम से काम पर लगे होते थे। उनके पास जॉब कार्ड थे। हर जगह यह समस्या आ रही थी। जोबकार्ड होल्डर अच्छी दिहाड़ी कमाने के लिए शहर चले जाते थे। नरेगा में बहुत कम दिहाड़ी थी। बिहार जैसे राज्य के लिए तो वह काफी थी, पर हिमाचल या पंजाब जैसे अधिक विकसित राज्य के लिए यह कम थी। वैसे बाद में थोड़ी सी बढ़ा भी दी गई थी, फिर भी वह नाकाफी थी। कई ठग किस्म के लोग टैंक-मालिक को अपने अकाऊंट से पैसे देते ही नहीं थे। कई कमीशन काट लेते थे। वैसे गाँव के भाई-बंधी के रिश्ते में ऐसा कम होता था। जॉब कार्ड होल्डर को साल के 150 दिनों का रोजगार मुहैया कराना सुनिश्चित किया जाता था। कईयों के बचे हुए 50 दिन इकट्ठे किए जाते थे, किसी के 40, तो किसी के 10 दिन। इस तरह से जितने जोबकार्ड-दिनों की जरूरत एक विशेष आकार के टैंक के लिए होती थी, उतने दिन पूरे करने पड़ते थे, तभी पेमेंट होती थी। हम तो जोबकार्ड-दिनों को इकठ्ठा करने के लिए अपनी मित्रमंडली के साथ गाड़ी में 10-10 किलोमीटर भी घूमे हैं। हर महीने

वहां-२ ही मस्ट्रोल लेकर साईंन करवाने भी जाना पड़ता था। कई लोगों को मनाना बड़ा मुश्किल होता था। कई लोग डरते थे। कई लोग इस आश्वासन को लेकर जोबकार्ड-दिन देते थे कि जब उन्हें किसी निर्माण कार्य की जरूरत पड़ती, तो हम उन्हें अपने जोबकार्ड-दिवस देते।

दोस्तों, जो जमीन घर के बाहर आँगन आदि की होती है, वह भूमि-रिकोर्ड में एक विशेष साझे खाते (अबादी देह) में आती है। खाता मुश्तरका भी साझा जमीन का ही खाता होता है, पर वह घर-आँगन से दूर खेत-खलिहानों को कवर करता है। वह जमीन किसी विशेष परिवार की मलकीयत नहीं होती। वह सभी परिवार वालों की साझी होती है। जिसका घर उसके सबसे नजदीक होता है, वह उसकी मानी जाती है। यदि बांटने की गुंजाईश हो, तो उसे आपस में बांटा भी जा सकता है। इसलिए पटवारी ने मौके पर जाकर छानबीन नहीं की। उसने दफ्तर में ही आँगन की जमीन का पर्चा-ततीमा मेरे परिवार के नाम बना कर दे दिया। काम शुरू होने पर पड़ौसी परिवार ऐतराज भी कर सकता है। हमारे एक पड़ौसी ऐसा चाहते हुए भी न कर सके, क्योंकि उस छोटी सी जमीन के बांटे जाने की गुंजाईश नहीं थी, और उनका घर उससे थोड़ा अधिक दूरी पर था। उन्होंने अपना घर बाद में बनवाया था। यदि वे चाहते, तो अपना घर कुछ अधिक दूरी पर भी बना सकते थे, हमारा आँगन छोड़कर, क्योंकि चारों तरफ उनकी लम्बी-चौड़ी जमीन थी। बाद में हमने कभी भी उन्हें अपने टैंक से पानी निकालने से नहीं रोका। इससे समाज में आपसी विशवास व सहयोग बढ़ता है।

दोस्तों, टैंक निर्माण के लिए उच्च गुणवत्ता के कच्चे माल का इस्तेमाल किया गया। पहाड़ी खदानों का रेता/बालू टिप्पर में मंगाया गया, जो नजदीक में ही उपलब्ध था। वह देखने में सुनहरा व सुन्दर होता है। उसमें मिट्टी नहीं होती। वैसे, नदी का रेता भी प्रयोग में लाया जा सकता है, पर वह धुला हुआ होना चाहिए, नहीं तो उसमें मिट्टी होने से वह कमजोर बन जाता है। पत्थर भी सबसे अच्छी पहाड़ी खदान से मंगाया गया। वह तोड़ी अधिक दूरी पर थी, पर ज्यादा नहीं। उसका पत्थर बहुत मजबूत और रंध्रदार (पोरस) जैसा था, जिसमें सीमेंट बहुत अच्छी पकड़ करता था। 10-12 किलोमीटर तक वे सड़क के रास्ते से टिप्पर पर ढोए जाते थे। कुल मिलाकर कोई लगभग 4-5 टिप्पर पत्थरों के ही लगे होंगे। सड़क से घर तक 1 किलोमीटर के रास्ते पर उन्हें खच्चरों से ढोया जाता था। खच्चरों के कारण ढुलाई-भाड़ा बढ़ जाता था। बड़े-छोटे अनगढ़े पत्थर होते थे। गढ़े और चोकोर पत्थर तो बहुत महंगे मिलते हैं। ज्यादातर वे धनिक लोगों द्वारा आलीशान व सजावटी मकान बनाने के लिए प्रयोग में लाए जाते हैं। टैंक के लिए बने गड्ढे में टैंक-निर्माण का काम शुरू हो चुका था। सबसे पहले फर्श-निर्माण के लिए गटका डाला गया। गटका छोटे-२ (लगभग बंद मुट्ठी के आकार के) पत्थरों को कहते हैं, जिनकी लगभग आधा फुट की तह जमीन पर बिछाई जाती है। वे हमें पास के खेतों में ही बहुतायत में मिल गए थे। उसके लिए भी ज्यादा कच्चा पत्थर नहीं होना चाहिए। उनके ऊपर डालने के लिए कंक्रीट मिक्चर बनाया जाता है। उसके लिए लगभग 1:4:8 रेशो में क्रमशः सीमेंट, रेता और बजरी (रोड़ी/लगभग कंचे के आकार के पत्थर के अनगढ़े टुकड़े) पानी के साथ आपस में मिलाए जाते हैं। ये जितनी अच्छी तरह से आपस में मिक्स होंगे, और जितने कम पानी का प्रयोग किया जाएगा, कंक्रीट की मजबूती उतनी ही अधिक होगी। हालांकि पानी उतना तो होना ही चाहिए, जिससे उसे चिन्हित स्थान पर लगा कर अच्छी तरह से दबाया जा सके। अब वैज्ञानिक प्रयोगों से सिद्ध हो चुका है कि जरूरत से जितना ज्यादा पानी होगा, उतनी ही मजबूती उसकी कम हो जाएगी। ज्यादा पानी जब सूखता है, तब सीमेंट

संरचना अन्दर से खाली/पोली रह जाती है। इस तरह, ठीक इम्पेकशन (दबाव) के बिना भी सीमेंट-संरचना अन्दर से रंध्रदार/पोली रह जाती है। यह बेसिक सी बात अधिकाँश मिस्त्रियों को पता नहीं होती। वे कंक्रीट की पतली कढ़ी बना देते हैं, ताकि उन्हें उसे सेट करने के लिए अपने हाथ से करंडी (कंक्रीट को मिक्स करने व दबाने के लिए बनी हेंडल वाली धातु की प्लेट) न चलानी पड़े।

दोस्तों, हमने पूरी गुणवत्ता का कंक्रीट मिक्चर बनाया, और उसे गटके के बीच में चारों तरफ पूरा घुसाकर सेट किया। याद आया, हमने उस फर्श को पक्का करने का काम अंत के लिए रखा। गटका भी हमने उसी समय, टैंक-निर्माण के अंत में ही बिछाया। टैंक की दीवार की चिनाई के समय बड़े-२ पत्थर उस गड्ढे में उंचाई से फैंकने पड़ते हैं, जिससे सीमेंट से पक्के किए हुए फर्श में सूक्ष्म क्रैक्स पड़ जाते हैं। उससे टैंक के लीक होने की संभावना बढ़ जाती है। अधिकाँश लोग शुरू में ही फर्श को पक्का कर देते हैं। शायद तभी लोगों के टैंक लीक कर रहे थे। हमने चौकोर आकार के कच्चे फर्श के चारों ओर के मार्जिन पर सवा दो फुट की खाली कंक्रीट की पटड़ी बनाई। उस पर लगभग 2 फुट चौड़ाई की दीवार की चिनाई शुरू की गई। उसमें से बाहरी लगभग डेढ़ फुट पर पत्थर की चिनाई की गई। अंदरूनी आधा फुट में सिंगल ईंट की दीवार चिनी गई। ईंट और पत्थर की दीवार के बीच में छोटी सी गली (लगभग 3 इंच चौड़ाई की) होती थी, जिसमें जीरी (कंक्रीट मिक्चर) को करंडी से ठूंस-२ कर भरा जाता था। उससे टैंक लीक-प्रूफ बन जाता था। कई बार समय के साथ पत्थर सीमेंट को छोड़ देता है, पर ईंट कभी नहीं छोड़ती। ईंट खुद टूट जाती है, पर सीमेंट को नहीं छोड़ती। बेशक ईंट भी पानी में जर (कमजोर, भुरभुरी होकर झड़ना) जाती है, पर लगभग 20-25 साल तो निकाल ही देती है। वैसा होने पर पुरानी ईंट को निकाल कर नई ईंट को उसी तरह लगाया जा सकता है। बीच में डाली गई जीरी का एक काम यह भी होता था कि यदि कोई पेड़ आदि की जड़ पत्थरों के बीच की दरार में से घुसकर अन्दर प्रवेश करने लगे, तो जीरी उसे अन्दर नहीं घुसने देती, क्योंकि उतने कम गैप में उसमें दरार नहीं पड़ सकती। वैसी भी कंक्रीट में बहुत मजबूती होती है। उसमें सीमेंट का रेशो भी कुछ ज्यादा रखा गया था। ऐसा ही तरीका हमने अपने 30 साल पुराने पत्थर से बने टैंक पर लागू किया था। वह अनजानी जगह से लीक कर रहा था। हमने उसकी भीतरी दीवार पर लोहे की टंकी (पत्थर पर छोटा गड्ढा बनाने वाला कीलनुमा औजार) से छोटे-२ गड्ढे (लगभग औसत आकार, आधा बाय आधा सेंटीमीटर) कर दिए थे, ताकि उससे कंक्रीट चिपक सकता। फिर हमने उसी तरह उससे अन्दर की तरफ सिंगल ईंट की चिनाई की, और दोनों दीवारों के बीच का गैप कंक्रीट से भरा। उससे पानी लीकेज बिलकुल बंद हो गई, और टैंक नए जैसा बन गया। वह टैंक लगभग 1 लाख लीटर क्षमता का था, जिससे उस पर ऐसा करने से 50 हजार रुपए का खर्चा आया। वह पैसा पंचायत से किसी सरकारी योजना के तहत, बड़ी मुश्किल से, व प्रधान से बहुत मन्नत करने के बाद प्राप्त हुआ था। 1-2 अनभिज्ञ व ईर्ष्यालु प्रकार के लोगों ने तो रिपेयर के लिए उतने ज्यादा पैसे खर्च करने पर आपत्ति भी जाहिर की थी। पर यदि चार लाख से निर्मित होने वाले नए टैंक का काम पुराने टैंक ने पचास हजार में कर दिया, तो लाभ ही था। जो संसाधनों की बचत हुई थी, वह अलग। यह लगभग 2014-15 की बात है। इस पुस्तक के गिनाए सभी काम लगभग साथ-२ ही हुए थे। यही तरीका मैंने एक पशुपालक भाई को भी बताया था, जब मैं गौ-सेवा के काम से उसके घर पर गया था। उसका टैंक लीक कर रहा था, और वह उसे तोड़कर दुबारा बनाना चाह रहा था। जब मैंने अपना अनुभव उन्हें सुनाया, तो वे खुश हो गए, और अपने टैंक को तुड़वाने के खर्चे से बचाने के लिए बहुत धन्यवाद करने लगे। खैर, हमने

अपने टैंक की 2 फुट की दीवार को घेरने के बाद कंक्रीट की पटड़ी से बचने वाली अतिरिक्त जगह खाली छोड़ दी थी (कुल चौड़ाई सवा दो फुट जो थी)। वह इसलिए ताकि फर्श की कंक्रीट को बाद में उसके ऊपर डाला जा सकता। उस कंक्रीट के वजन से फर्श उस पटड़ी से पूरी तरह से चिपक जाता, और लीक-प्रूफ बन जाता। कई लोग ऐसा नहीं करते। इससे दीवार और फर्श के बीच में कोने पर नाज़ुक जोड़ बन जाता है। टैंक में ज़रा सी भी हलचल होने से वह जोड़ कभी भी लीक कर सकता है। बड़ी तरतीब से दीवार की चिनाई की जा रही थी। पहले एक रद्दा (लगभग 1 फुट की ऊँचाई) पत्थर का चिना जा रहा था, फिर उतना ही ईंट का चिना जा रहा था। ईंट की दीवार पहले चिने जाने पर वह गिरते हुए टेढ़े-मेढ़े पत्थरों से टूट सकती थी। फिर दोनों के बीच में कंक्रीट भरा जा रहा था।

लगभग सारा ही टैंक भूमिगत हो गया था। केवल एक तरफ की मिट्टी की आधी, ऊपर वाली दीवार नहीं थी। वह खुली जगह वास्तव में एक विंडो/खिड़की का काम कर रही थी, जहाँ से टैंक-खुदाई से निकला मलबा बाहर निकला जाता था। बहुत ज्यादा मलबा निकला। वह पथरीला था। खेती के काम का नहीं था। मिट्टी में दबा हुआ मलबा ज्यादा नहीं लगता, क्योंकि वह हाई प्रेशर की टाईट पेकिंग में होता है। बाहर निकाले जाने पर तो वह खुल कर बहुत फैल जाता है। सौभाग्य से उस विंडो के नीचे खड्ड की ओर को खड़ी ढलान थी, जो हमारी ही अपनी मलकीती जमीन में थी। वह एक गाँव वाले के कब्जे में थी, जो कुछ समय पहले ही उनसे छूटी थी, पटवारी से जमीन की निशानदेही करवाने के दौरान। इसलिए टैंक-साईट से 30 फुट दूर रेहड़ी में ले जाकर मलबा उस ढाक की तरफ गिरा देते थे, जो सीधा खड्ड की तरफ चला जाता था। निचली तरफ हमने एक पत्थर का छोटा डंगा भी बनाया था, ताकि मलबा वहां रुक जाता, और ज्यादा जमीन को बर्बाद न करता, और खड्ड को भी ब्लॉक न करता। कई बार तो मलबे को डंप करना ही मुश्किल हो जाता है। कई बार तो उसकी लागत टैंक-निर्माण की लागत से भी ज्यादा आती है। टैंक के बन जाने पर हमने उस विंडो को भी उसी से निकले मलबे से भर दिया था। इससे टैंक पूरी तरह से अंडरग्राऊंड बन गया था। एक ध्यान देने योग्य बात है कि टैंक के अंतिम ऊपरी डेढ़-दो फुट की दीवार को पतला भी बनाया जा सकता है, यदि मेटीरियल या जगह आदि की कमी हो, क्योंकि कम गहराई में पानी का दबाव कम होता है। हमें जगह की कमी के कारण एक दीवार के साथ ऐसा ही करना पड़ा था। वहां दीवार की चौड़ाई लगभग 1 फुट तक पहुँच गई थी।

दोस्तों, याद आया कि मैंने ग्रेजुएशन पूरी करके अपने गाँव आने के एकदम बाद वाटरशेड परियोजना में भी काम किया था। उस परियोजना में हमारी पंचायत भी शामिल थी। उसमें चैक डैम बनाए जा रहे थे। मैं आसपास के गाँवों के कम पढ़े नौजवानों के साथ गैंती और झब्बल (मिट्टी खोदने के औजार) चलाता था। लोग हैरान थे कि एक ग्रेजुएट नौजवान कितने शौक से जल संरक्षण के लिए कठिन परिश्रम कर रहा था। उसमें तालाब खोदे जा रहे थे, ताकि उसमें बारिश का पानी इकट्ठा होकर रिसता रहता, और जमीन के जलस्तर को बढ़ाता। इसी तरह, विभिन्न खड्डों के बीचोंबीच दीवारें बनाई गईं, जिन्हें चैक डैम कहते हैं। वे दीवारें (पत्थर के डंगे) पानी को रोक लेती थीं, जिससे वहां एक कच्चा तालाब जैसा बन जाता था। उससे भी पानी जमीन में रिसता, जिससे भूमिगत जलस्तर बढ़ता। मैंने लोगों के साथ 3-4 चैक डैम बनाए और एक बड़ा तालाब बनाया। देशभक्ति और जल-संरक्षण के लिए जूनून से ही वैसा संभव हो पाया था। हालांकि हमें उस सरकारी प्रोजेक्ट की तरफ से न्यूनतम दिहाड़ी/पारिश्रमिक भी मिल रही थी। हर महीने मस्ट्रोल पर हम

हस्ताक्षर करते थे, तब पेमेंट होती थी। फिर लोगों के बीच में आपसी सहयोग घटने लगा। कुछ अति महत्त्वाकांक्षी और नकारात्मक प्रकार के लोग एक-दूसरे पर नेतागिरी करने के और पैसा हड़पने के आरोप लगाने लगे। काम की गुणवत्ता पर भी विशेष ध्यान नहीं दिया गया। इससे वह योजना वहीँ तक सीमित हो गई। हालांकि कुछ समय बाद उसका टेन्योर ख़त्म हो जाने पर वह योजना खुद ही बंद हो गई। हमारी पंचायत ने उसका काम ही टेन्योर के अंत के करीब शुरू करवाया। बेशक उसके कई सालों बाद हमारे वार्ड के वार्ड-पंच ने उस चैक डैम बनाने के काम को नरेगा योजना के अंतर्गत संभाला। उससे कुछ लाभ तो हुआ, पर पूरा नहीं। उन कामों में भी गुणवत्ता व सूझ-बूझ की कमी झलकी। इससे लोग उसका विरोध करने लगे। वह लोगों के खेती के क्षेत्र से दूर नदी की तरफ चैक डैम बना रहा था। शायद उस तरफ जमीन में पत्थरों की अच्छी उपलब्धता थी। वह कह रहा था कि उससे नदी में जलस्तर बढ़ेगा, और नीचे वाले क्षेत्रों को फायदा होगा। वह कह तो ठीक रहा था, पर लोगों को आपत्ति थी कि उनके क्षेत्र को छोड़कर केवल दूसरे क्षेत्रों को ही क्यों पानी उपलब्ध कराया जाता।

खैर, उस भूमिगत टैंक का निर्माण जोरों-शोरों से व चारों तरफ खुशहाली के साथ चल रहा था। ऐसे भूमिगत टैंक को चारों तरफ की मिट्टी अच्छा सहारा देती है। क्योंकि कच्चे गड्ढे की दीवारों की मिट्टी कहीं कम उखड़ी होती है, तो कहीं ज्यादा; इसलिए टैंक की दीवार व गड्ढे की दीवार के बीच में हमने गटके की अच्छी पैकिंग कर दी, ताकि कोई गैप खाली न रहता । गटकों को हमने कंक्रीट मिक्चर डालकर पक्का कर दिया। इससे टैंक को चारों ओर की भूमि का अच्छा ढासना/सपोर्ट मिल गया। भूमिगत टैंक में तो सिंगल पत्थर की दीवार ही काफी होती है। भूमि के ऊपर के टैंक को डबल पत्थर की दीवार देनी पड़ती है, क्योंकि वहां कोई गड्ढे की दीवार तो होती नहीं, जो गटके (पत्थर के टुकड़ों) को पैक कर सके। कई लोग भूमिगत टैंक में भी डबल पत्थर की दीवार लगाते हैं। वह इसलिए, ताकि यदि कभी चारों तरफ की भूमि को खोदकर टैंक का मकान बनाना हो, तो दीवार सही-सलामत रह सके। नहीं तो खोदते समय छोटे-२ गटके के पत्थर निकलते रहते हैं, जिससे दीवार गायब ही हो जाती है। इसी तरह कई लोग अपने आँगन में खाली कंक्रीट का फर्श नहीं बिछाते, बल्कि कंक्रीट के साथ सरिया बिछा कर आरसीसी का फर्श बिछाते हैं। उसके बाद चारों कोनों में एक-२ पिलर/स्तम्भ गाढ़ देते हैं। फिर कभी यदि उन्हें भविष्य में टैंक का मकान बनाने की जरूरत पड़े, तो वे उसके नीचे की मिट्टी खोदकर आराम से बना सकते हैं। वह फर्श फिर लेंटर/छत का काम भी करने लगता है।

मित्रो, टैंक की दीवार पूरी बन चुकी थी। फिर लेंटर डालने का दिन आया। उसके लिए लकड़ी की शैटरिंग चाहिए थी। मिस्त्री जी ने छोटे-२ पेड़ काटने को कहा। हमें इससे पर्यावरण की हानि लगी, क्योंकि एक बार के प्रयोग के लिए बहुत से वृक्ष बली चढ़ जाते। इसलिए हमने इधर-उधर से शैटरिंग इकट्ठी कर ली। कुछ शैटरिंग किराए पर ले ली। हमारे गाँव में लेंटर डालने के लिए बुवारे की रिवाज थी। इसमें आसपास के लोग इकट्ठा होकर श्रमदान करते थे, और शाम को सबके लिए अच्छे और ताकतवर व्यंजन बनते थे। पर वह प्रथा कुछ कम होने लगी थी। इसलिए हम परिवार के 4-5 ताकतवर सदस्य ही इकट्ठे हुए। उस दिन बहुत ताकत लगती है। कंक्रीट को तसलों में अकेले या खाली बोरियों की सतह पर दो आदमी के द्वारा पकड़ा जा कर ढोना पड़ता है। जहां पर कंक्रीट मिलाया जाता है, वहाँ से उठाकर मिस्त्री तक पहुँचाना पड़ता है। 4-5 मजदूर (नेपाली गोरखे) तो हमारे पास पहले से उपलब्ध थे ही। मैंने अपने सामने सारा पूरा

कंक्रीट मिक्चर बनवाया। पानी जरूरत से ज्यादा नहीं डालने दिया। हालांकि कई लोग मेरी रोका-टोकी से खफा भी हुए थे। मुझे उच्च गुणवत्ता के बदले में वैसा भी मंजूर था। मिस्त्री जी ने एक कमी यह रखी कि सरिये के जाले को शटरिंग कब फट्टों के कुछ ऊपर नहीं फिक्स किया। वैसा जगह-२ पर उनके नीचे पत्थर के टुकड़े फंसा कर किया जाता है। इससे सरिया फट्टों से चिपका रह गया। कंक्रीट की तह ऊपर रह गई, और सरिये का जाला नीचे। पूरी मजबूती के लिए सरिये का जाल कंक्रीट की तह के बीचोंबीच आना चाहिए। दूसरी कमी यह रही कि सीमेंट वाला पानी नीचे न चोए, उसके लिए कई जगह पर प्लास्टिक की शीट बिछाई गई। शायद मिक्चर में पानी कई जगह पर ज्यादा पड़ गया था। बाद में उस शीट को निकालने में काफी दिक्कत आई। कई जगह से तो वह निकाली ही नहीं जा सकी। उससे टैंक की छत की निचली सतह में पलस्तर चिपकाने में काफी परेशानी आई। ऐसी छोटी-२ कमियां अधिकाँश स्थानों पर रखी जाती हैं, जिससे गुणवत्ता का बुरी तरह से भट्ठा बैठ जाता है। ऐसी ही एक कमी क्योरिंग की रखी जाती है। जमे हुए कंक्रीट की, पानी से 2-3 हफ्ते तक सिंचाई को क्योरिंग कहते हैं। कयोरिंग की हर जगह अनदेखी की जाती है। अधिकाँश अनपढ़ मजदूर वर्ग के लोग तो उसकी महत्ता समझते ही नहीं, पर अधिकाँश पढ़े-लिखे लोग भी इसमें बड़ी लापरवाही बरतते हैं। सीमेंट की अधिकाँश संरचनाओं में जो कमजोरी रहती है, वह सामग्री की गुणवत्ता या उसकी मात्रा की कमी से नहीं, अपितु क्योरिंग की कमी से होती है। ऐसी लापरवाही सरकारी विभागों में ज्यादा देखी जाती है। नवनिर्मित सीमेंट-संरचना को क्क्योरिंग से 25 परसेंट मजबूती पहले तीन दिन में, 50% पहले हफ्ते में, 75% दूसरे हफ्ते में, और 90% तीसरे हफ्ते में प्राप्त होती है। उसके बाद 10% की शेष मजबूती अंतिम चौथे हफ्ते में व धीरे-२ कई सालों तक बिना क्योरिंग के ही मिलती है। 100% मजबूती पांच साल में प्राप्त होती है। एकबार मैंने लोकनिर्माण विभाग के एक वरिष्ठ अधिकारी से इस लापरवाही के मामले में जवाब माँगा था, तो उन्होंने भी यह कहकर टाल दिया था कि एक हफ्ते की ही क्योरिंग काफी होती है, उसके बाद खुद होती रहती है। पूरी मजबूती प्राप्त करने के लिए तो तीन हफ्तों तक क्योरिंग होनी चाहिए। पर यदि दो हफ्ते भी दी जाए, तो भी काम चल सकता है। यहाँ तो हाल यह है कि अधिकाँश मामलों में एक हफ्ते तक भी क्योरिंग नहीं की जाती, जो निहायत ही जरूरी है। हमारे देश के संसाधनों की बर्बादी में क्योरिंग की कमी भी एक मुख्य वजह है। मुझे तो सीमेंट-संरचना के निर्माण के बाद छुटपुट मामलों को छोड़कर क्योरिंग करते हुए कोई नहीं दिखता। क्योरिंग की जिम्मेदारी सब एक-दूसरे पर डालते रहते हैं, और अपना पल्ला झाड़ते रहते हैं। क्योरिंग के झंझट से बचने के लिए बरसात के मौसम में निर्माण-कार्य करवाना ठीक रहता है। क्योरिंग शुरू से होनी चाहिए, क्योंकि एकबार भी सीमेंट के सूख जाने पर उसकी मजबूती वापिस नहीं आती।

दोस्तों, मैंने टैंक-निर्माण के समय सभी संरचनाओं पर पूरे 4 हफ्तों तक नमी को बरकरार रखा। लेंटर डालते समय तेज गर्मी पड़ रही थी। इसलिए मैं उसे गीले जूट के बोरों से ढक कर रखता था, और ऊपर से उन्हें सस्ती पोलीथीन शीट से भी ढक देता था। पानी की कमी थी, नहीं तो लेंटर पर छोटे-२ कम्पार्टमेंट बनाकर उन्हें पानी से भर कर रखता, और ढके बिना खुला छोड़कर रखता। मैं तो टैंक की दीवारों पर भी जूट के गीले बोरे लटका कर रखता था, ताकि उन पर लगातार नमी बनी रहती। यही कारण था कि टैंक को बने हुए लग्भग 7-8 साल हो गए हैं, पर उसमें अभी तक लीकेज की कोई जानकारी नहीं मिली है। ऐसे छोटे-मोटे सभी काम मुझे स्वयं करने पड़ते थे, क्योंकि गुणवत्ता के मामले में सभी लोग बड़ी-२ आँखें करके झाँकने लगते थे। मिस्त्रीजी तो लेंटर की निचली सतह पर पलस्तर करने को भी टाल गए थे।

उनका कहना था कि टैंक में पानी का जलस्तर नीचे रखा जाएगा, जिससे लेंटर का सरिया जंग नहीं खाएगा। पर वे यह नहीं मान रहे थे कि पानी की भाप से भी तो सरिया गीला हो ही जाएगा। शायद वे टैंक के अन्दर की तंगी में काम नहीं करना चाह रहे थे। फिर एक कामचलाऊ मिस्त्री से लगभग दोगुने पैसे देकर वह काम कराया गया। फिर टैंक संपूर्ण हुआ, जिसे देखकर रुह खुश हो जाती थी। बिना पलस्तर की सतह के सुराखों में तो कीड़े-मकोड़े अपना घर बनाते। लेंटर पड़ने के बाद 3-4 दिन तक हम उस पर आराम से चलते थे, क्योंकि उस समय वह कच्चा होता है। शुरू के 12 घंटे तक उसकी सिंचाई नहीं करनी चाहिए, नहीं तो मैंने देखा कि उसकी ऊपरी सतह पपड़ी की तरह निकल जाती है, कई स्थानों पर। खैर, 1 महीने बाद लेंटर की शैटरिंग खोल दी गई थी। एक कोने पर उसमें लगभग 2 फुट बाय 2 फुट का चोकोर सुराख रखा गया था। वह साफ-सफाई के लिए अन्दर-बाहर जाने के लिए और शैटरिंग को टैंक से बाहर निकालने के लिए था। उसके ढक्कन की लोहे की फ्रेम हमने शुरू में ही सरिये के साथ बाँध दी थी। उसमें चारों ओर बहुत से होल्डफास्ट (लोहे के कुंडे जैसे) सही दिशा में वैल्ड कर दिए थे। इससे उन्होंने सरिये को अच्छी तरह से जकड लिया था। लेंटर की कंक्रीट पड़ने पर वह फ्रेम सदा के लिए पक्की हो गई। ढक्कन के लिए हमने वैसी ही व उसी आकार में फ्रेम बनाई, जिसमें उरे से परे तक बहुत सी लोहे की छड़ें वैल्ड थीं। उसको प्लास्टिक शीट पर रखकर मैंने कंक्रीट (सीमेंट का भाग ज्यादा) डाला, तो वह आरसीसी का ढक्कन बन गया। ऊपर की तरफ का हल्का सा डोम शेप बनाया, ताकि उस पर चलने में दिक्कत न आती, ठोकर न लगती, और ढक्कन की पोजीशन का पता भी स्पष्ट चला रहता। उस पर खोलने के लिए कुंडा नहीं लगाया, नहीं तो शरारती लोग व बच्चे बार-२ उसे खोलते रहते हैं। उससे दुर्घटना की भी संभावना बढ़ जाती है। कंक्रीट की वजह से भी वह बहुत भारी होता है, जिससे उसे बच्चे उठा भी नहीं सकते। जब कभी बिरले मामले में उसे खोलने की जरूरत पड़ती थी, तब हम उसकी फ्रेम में गैंती (खोदने वाला औजार) फंसा कर उसे खोल देते थे। इसी तरह, हमने घर की तरफ वाले एक कोने पर एक बड़ा सुराख रखा, जिसमें रेन वाटर हार्वेस्टिंग चैंबर से आ रहा 2 इंच का पाईप घुस जाता। एक 1 इंच का सुराख़ हमने तीसरे कोने में भी रखा, ताकि उसमें जल विभाग के नल से आ रही पतली काली पाईप घुस जाती। इससे अतिरिक्त जल का संग्रहण हो जाता था। वेल्डर से एक लोहे की प्लेट लाया, जिसमें बीच में सुराख था। उसमें कील से लकड़ी का गुटखा जोड़ा। उससे उस सुराख़ का ढक्कन बन गया। मेरा नन्हा सा बेटा घुटनों के बल रेंगता हुआ वहां आता, उसको बाहर निकालकर उसका गहराई से मुआयना करता, और फिर उसे दूर फ़ेंक देता। फिर वह उस सुराख में अंगुली डाल कर खेलता रहता। धीरे-२ वह टूट कर गुम ही हो गया। फिर घर की बूढ़ी अम्मा उसमें कपड़े की गुदड़ी घुसा कर रखती। एक आधे इंच आकार का सुराख खड्ड की तरफ ओवरफ्लो के लिए रखा। वह लेंटर के बिलकुल नीचे था। हालांकि कभी हमने इतना पानी होने ही नहीं दिया कि वह ओवरफ्लो हो पाता। दादी अम्मा उसमें जालीदार कपड़ा बाँध कर रखती, ताकि सर्प आदि जीव अन्दर न घुसता। वैसे उन सुराखों से गर्मी में बनी हुई भाप भी बाहर निकलती रहती है, जिससे टैंक के अन्दर दबाव नहीं बढ़ता। वैसे टैंक लीक होने का एक कारण यह है प्रेशर की भाप भी हो सकती है। मुख्य कारण तो उसमें ऊँचाई से गिरता हुआ पानी होता है। कई बार पानी के गिरने का कम्पन टैंक में पैदा हो रहे कम्पन के समान होकर उसके ऊपर चढ़ जाता है। इसे अनुनाद/resonance कहते हैं। इससे टैंक बहुत तेजी से कांप सकता है, जिससे सूक्ष्म क्रैक पैदा होकर लीकेज कर सकते हैं। इसलिए अच्छा रहता है, यदि पानी छोड़ने वाली पाईप फर्श के पास हो, ताकि वह हमेशा पानी में डूबी रहे। इसी तरह टैंक में तैराकी करने वालों से भी

ऐसा ही महाकम्पन पैदा हो सकता है। एक आदमी जब पानी के टैंक में छलांग लगाता है, तब टैंक पर बहुत ज्यादा दबाव पड़ता है। तैराकी से समस्या खुले टैंक में आती है, क्योंकि खुले टैंक में ही लोग तैरते हैं। वैसे तो मिस्त्रीजी कहते थे कि ऐसा कुछ नहीं होता, पर सावधानी में ही सुरक्षा छिपी है। खुले टैंक को कवर भी करना पड़ता है, ताकि उसमें दुर्घटनावश कोई घुस न जाए। बच्चे, व कुत्ते तो विशेष शिकार होते हैं। हमने एक खुले टैंक पर क्रेट वायर की फेंसिंग की थी। वह लगभग 10-20 हजार रूपए की पड़ी। टैंक का आकार लगभग 24 फुट बाय 18 फुट था। लगभग 3 फुट की ऊँचाई का तार का जाला था। वैसे अढ़ाई फुट से भी काम चल जाता। कई बार हमने खुद उसमें घुसे हुए ज़िंदा कुत्ते बाहर निकाले थे।

दोस्तों, उस टैंक को बनाते समय उसके फर्श पर भी एक 1 इंच की पाईप बाहर को, खड्ड की तरफ को फिक्स की थी। उस सुराख तक चारों तरफ से हलकी उतराई/स्लोप थी, जिससे सफाई करते समय पानी वहां इकट्ठा हो जाया करता। लगभग 7-8 साल हो गए, हमें तो सफाई की व उस पाईप की जरूरत नहीं पड़ी। दोस्तों, याद आया, टैंक की अंदरूनी सतह की फाईनल सीमेंट-फिनिशिंग के बाद हमने उसमें एक फुट लेवल तक पानी भर दिया था। वह पानी खुला और गंदा था। उसे हमने एक खुले टैंक से टुलू पम्प से उठाया था, जो नीचाई पर था। उससे ऐसा होता है कि क्योरिंग होने के साथ-२ टेम्प्रेचर फ़्लक्चुएशन नहीं होता। रात-दिन को तापमान एक जैसा बना रहता है। उससे गर्म-सर्द से बनने वाले सूक्ष्म क्रैक नहीं पड़ते, जिससे लीकेज नहीं होती। वैसे भी टैंक कभी खाली नहीं रहना चाहिए। उसमें कम से कम 1-2 फुट पानी तो हमेशा ही रहना चाहिए। इसीलिए हमने टैंक से बाहर निकलने वाली आधे इंच की पानी भरने की पाईप को टैंक के अढ़ाई फुट के लेवल पर टैंक की दीवार में फिक्स कराया था। वैसे वह 2 फुट पर होती, तो ज्यादा बेहतर होता। पूर्वोक्त डेढ़ फुट की ड्रेनेज पाईप के लिए बाहरी गेट वाल्व हमने कंपनी का व अच्छे पीतल का लिया। वह लगभग 500 रुपए में आया। देसी वाल्व अक्सर खराब होते रहते हैं। पाईपें लीकेज के लिए अच्छी तरह से चैक कर लेनी चाहिए। यदि मिट्टी के अन्दर दबाने के बाद पाईप लीक करती हुई पाई गई, तो उसे बदलने के लिए बहुत मेहनतकरनी पड़ेगी। हमें अपनी पाईप के लीक होने का पता बाद में चला। पर खुशकिस्मती से वह मिट्टी में दबे हुए हिस्से के बाहर लीक हो रही थी। लीकेज वाले हिस्से से नल तक पूरा पाईप काट कर, टैंक से आ रही पाईप पर नया पाईप जोड़ दिया गया। बाद में गर्मी का मौसम बीत जाने पर और बरसात शुरू होने पर हमने उस टैंक के उस गंदे पानी की निकासी ड्रेनेज पाईप के रास्ते से उसी पुराने टैंक के अन्दर को कर दी, जिससे वह पानी ऊपर उठाया था। इसके लिए हमने ड्रेनेज पाईप के गेट वाल्व को घेरता हुआ छोटा सा सीमेंट-ईंट से चैंबर (1 फुट बाय 1 फुट बाय 1 फूट) बनाया था, जिसमें भी निकासी पाईप के लिए धरातल से थोड़ा ऊपर एक सुराख़ था। वह इसलिए उसके फर्श से थोड़ा ऊपर था, ताकि कोई मोटी चीज नीचे बैठ जाती, और पाईप में घुसकर उसे ब्लॉक न करती। हमने चैंबर के सुराख के बीचोंबीच एक लोहे की दो कीलें फंसा दी थीं। उससे पाईप में किसी मोटी चीज के फंसने की संभावना नहीं थी। बच्चे भी तो शरारत करते हुए उसमें गेंद वगैरह फंसा सकते थे। पर उन कीलों में पानी के साथ आए हुए पत्ते फंसने लगे, जिससे पानी आगे जाना बंद हो जाता। मैं भरी बारिश में भीगते हुए उन पत्तों को बाहर निकालता, ताकि खड़ा पानी चालू होकर टैंक में घुस सके। इसलिए हमने एक कील उखाड़ दी, जिससे सुराख केवल दो बराबर हिस्सों में बंटा रहा। उससे कोई समस्या नहीं बची। छेद का आकार निकासी पाईप के अनुसार लगभग दो इंच का था। ऐसा हमने सभी चैम्बरों के साथ किया।

दोस्तों, अब आँगन में बने टैंक में छत के पानी को इकट्ठा करने की बारी थी। हमारा घर लेंटर की छत वाला था। उसका पूरा क्षेत्रफल लगभग 50 स्क्वायर मीटर का होगा। हमने उन कोनों की निशानदेही की, जहां पर वर्षा का पानी इकठ्ठा होता था। ऐसा हमने बारिश के बीच में देखा। वैसे दो कोने हमने चिन्हित किए, जहाँ पर लगभग 80% छत का पानी इकठ्ठा होता था। बाकी 20% पानी इधर-उधर चला जाता था। उसको हमने बाद में कैप्चर करना था। उन चिन्हित दो कोनों पर हमने लेंटर में छेद किया। छेद लगभग 2 इंच का गोलाकार था, जिसमें प्लास्टिक का 2 इंच का आम उपलब्ध रूफ वाटर ड्रेनेज पाईप फिट हो जाता। वह पाईप सीधा दीवार के पूरे कोने को छूता हुआ नीचे आता था, और धरातल पर एक चैंबर में ख़त्म होता था। उस चैंबर के आऊटलेट छेद से 2 इंच के पाईप का टुकड़ा फिट कर दिया जाता, जो सीधा टैंक के अन्दर जा कर ख़त्म होता था। हमने यह गलती की कि टैंक की दीवार में लेंटर के नीचे चिनाई के समय एक छेद नहीं रखा था। यदि वैसा होता, तो वह पूरा पाईप अन्डरग्राऊंड हो सकता था। इसलिए हमें टैंक के लेंटर के कोने में बाद में ऊपर से छेद करना पड़ा, जिससे वहां पाईप का हिस्सा बाहर को रहकर अजीब सा लगता था। खैर, फिर आदत हो गई थी। हमने तो टू वे सिस्टम बनाया हुआ था। उसी चैंबर में एक और छेद था, जिससे नीचाई पर स्थित पूर्वोक्त गंदे पानी के टैंक से आया हुआ अंडरग्राऊंड पाईप जुड़ा होता था। उस छेद को हम खुला रखते थे, ताकि सारा पानी नीचे चला जाया करता। हम थोड़ी देर बारिश होने दिया करते, ताकि लेंटर की गन्दगी (धूल, चिड़िया की बीट, पत्ते आदि) बहकर गंदे पानी के टैंक को चले जाया करते। फिर हम उस छेदको बंद करते थे। उससे चैंबर में पानी ऊपर उठकर ऊपर वाले छेदके पाईप से होकर आँगन के शुद्ध पानी के टैंक को चला जाया करता था। वैसे हम उसमें बीच-२ में ब्लीचिंग पाऊडर भी डाला करते थे। वैसे ज्यादातर हम चूने पर ही भरोसा करते थे। चूना सेहत के लिए सुरक्षित भी है, और सभी कीटाणुओं को मारकर पानी के मैल को भी नीचे बैठा देता है। तीस-पैंतीस हजार क्यूबिक फीट के, भरे हुए टैंक के लिए लगभग आधा किलो चूना काफी होता है। उसे हम बाहर ही, पानी की बाल्टी में घोलकर उस बाल्टी को टैंक में उड़ेल देते थे। कहते हैं कि बिना फ़िल्टर किए हुए पानी की गन्दगी से रिएक्शन करके ब्लीचिंग पाऊडर कैंसर पैदा करने वाले तत्त्व बनाता है, जो भाप से होकर साँसों से भी हमारे शरीर में घुस जाते हैं। खैर, उस आँगन के टैंक के चैंबर के बाहर से भी एक 2 इंच की प्लास्टिक पाईप गुजरती थी। वह छत के एक गंदे पानी वाले कोने के चैंबर से आती थी। वह सीधी गंदे पानी वाले टैंक को जाती थी। उसको हमने टी-जवाईंट से चैंबर के निचले छेद से जोड़ दिया था। इस प्रकार से, एक ही पाईप से दोनों चैम्बरों का पानी गंदे पानी वाले टैंक को ग्रेविटी से चला जाता था।

दोस्तों, इसी तरह मेरे पड़ौसी चाचा के चद्दर वाले छत से एक अन्य चैंबर में पानी इकट्ठा होता था। ऊपर बताई गई गंदे पानी वाली साझी पाईप उस चैंबर में खुलती थी। उस चैंबर से अकेली पाईप गंदे पानी के टैंक तक जाती थी। वह पाईप सबसे लम्बी (लगभग 30 मीटर लम्बाई) थी। ऊपर बताई गई दोनों अंडरग्राऊंड पाईपें छोटी थीं, जो लगभग 5-10 मीटर के पाईप के टुकड़े थे। इस प्रकार से गंदा पानी दो चैम्बरों से छोटी पाईपों के माध्यम से इकट्ठा होकर तीसरे सामूहिक चैंबर तक जाता था, जहाँ से तीनों छतों का गंदा पानी अकेली लम्बी पाईप से होकर गंदे पानी के टैंक तक पहुँचता था। वह बहुत खूबसूरत सिस्टम था, और सभी लोग उसकी तारीफ करते रहते थे। वैसे, में भी उसे परिवार के और पड़ौसियों के प्रेमपूर्ण सहयोग से ही बना पाया था। इस प्रकार से हम वर्षा के जल की एक-२ बूँद को संचित करने का प्रयास करते थे। यही वर्षाजल संग्रहण का मुख्य उद्देश्य है।

दोस्तों, इस तरह बारिश का सारा गंदा पानी और अतिरिक्त रूप से उपलब्ध साफ पानी उस नीचाई वाले पूर्वोक्त गंदे पानी के टैंक में इकट्ठा हो जाता था। वहां से मैंने खेत तक पानी पहुंचाने के लिए खुद प्लास्टिक की पाईप को जोड़ा। प्लास्टिक के पाईप की मनमर्जी की फिटिंग करना बहुत आसान होता है। मैंने अपने उस टैंक से दोनों पोलीहाऊसों तक प्लास्टिक के पाईप बिछाए व फिट किए। पाईप का जो हिस्सा टैंक में होता था, उस पर गर्म करके तारें घुसा दी थीं, जिससे वहां तारों का जाल बन गया था। उसके ऊपर एक पतली जाली और बाँध दी थी। इससे टैंक की गन्दगी से पाईप ब्लॉक नहीं होता था। वैसे भी हम पाईप को टैंक के फर्श से लगभग कम से कम आधा से एक फुट ऊपर रखते थे, ताकि वह गाद न खींचता। साईफनिंग/स्वयं-चुसाव से पानी का चुसाव खुद होता था। जहाँ पर प्लास्टिक पाईप में जोड़ लगाना होता था, वहां उसके अन्दर उचित मोटाई का लोहे का पाईप फिट किया जाता था। नल वगैरह की अतिरिक्त फिटिंग उस लोहे की पाईप के ऊपर की जाती थी। उन्हें गर्म करके एक दूसरे के ऊपर चढ़ाया जाता था। मैं तो होज क्लैम्प/hose clamp का भी इस्तेमाल करता था, उन्हें आपस में जोड़कर लीकप्रूफ बनाने के लिए। सारा पाईप मिट्टी में दबाया गया था, ताकि धूप व गर्म-सर्द से खराब न होता।

दोस्तों, अब विविध वर्षाजल संग्रहण टैंकों के निर्माण से हमारे इलाके में खूबसूरती, दृढ़-विश्वास, दृढ़-निश्चय और परस्पर सहयोग की भावना से भरी हुई नमी चारों ओर फैल गई थी। लोग उस सिस्टम से जाने-अनजाने प्रेरणा ले रहे थे। हमारा आँगन का टैंक उस सरकारी वर्षाजल संग्रहण की योजना का सर्वश्रेष्ठ टैंक आंका गया। उसके लिए हमारी पंचायत को सम्मान/ईनाम भी मिला। हमारे गाँव का पूर्ववर्णित सूखापन नष्ट हो गया। हमारा गाँव सरस व संतुलित हो गया था। गाँव के लोगों के मन से भी रूखापन काफी हद तक हट गया था। सभी लोग सरस, सरल, कोमल, व मीठे व्यक्तित्व के धनी बन गए। कुछ न कुछ हरी-भरी साग-सब्जियां पूरे वर्ष भर खाने को मिलतीं। उनमें मेथी, धनिया, मूली, मटर, सरसों, खीरा, कद्दू, लौकी, शिमला मिर्च, टमाटर आदि प्रमुख थीं।

इसी तरह, जैसे मैंने पहले भी बताया कि नरेगा के अंतर्गत ही दूसरा व कुछ छोटे आकार का टैंक (लगभग 20-25 हजार लीटर का) घर के आँगन वाले टैंक से लगभग 30 मीटर सीधी नीचाई व 100 मीटर की दूरी पर बनाया गया। जैसा कि मैंने पहले भी बताया (केंचुआ खाद वाले भाग में) कि उसमें ढलान पर बहता हुआ बारिश का पानी इकट्ठा किया जाता था। इससे उसका पानी पास ही के खेत में और साथ में बने केंचुआ खाद यूनिट में सिंचाई के काम आता था। पर जो साथ में खेत था, वह उससे थोड़ी सी ही नीचाई पर था। इसलिए आधे से ज्यादा टैंक खाली हो जाने पर वहां तक ग्रेविटी से पानी जाने में कुछ दिक्कत होती थी। उस टैंक के लिए गड्ढे की खुदाई करते समय हम उसके धरातल से बाहर को एक पाईप फिट करना भूल गए थे, इसलिए टैंक के पानी के ऊपर से उसके अन्दर को पाईप डालना पड़ता था, और पानी को ग्रेविटी से चूसना पड़ता था। हालांकि हम पाईप को हमेशा टैंक में डूबा रहने देते थे, और पाईप का दूसरा सिरा साथ ही पेड़ में ऊंचा (टैंक के अन्दर वाले पाईप के हिस्से के सिरे की ऊँचाई के स्तर तक) बाँध देते थे।। बाकी पूरा पाईप खेत में पड़ा होता था। इससे पेड़ से पाईप के सिरे को खेत में उतारने पर पानी खुद चल पड़ता था, क्योंकि पाईप में पहले से ही पानी होता था, जो ग्रेविटी से बहकर चुसाव का काम करता था। दोस्तों, उससे हमने सर्दियों में उगने वाली बहुत सी साग-सब्जियां खाईं, जैसे कि मेथी, धनिया, पालक, सरसों, सोया, प्याज-लहसुन की पत्तियाँ आदि। दरअसल उन्हें सिंचाई

की बहुत कम जरूरत होती है। एक तो उनकी जड़ें मिट्टी में बहुत ऊपर होती हैं। दूसरा, सर्दियों में जमीन के पानी का वाष्पीकरण नाममात्र का होता है, इसलिए सिंचाई की नमी लम्बे समय तक बनी रहती है। इन फसलों की पानी की जरूरत भी नाममात्र की होती है। शाम का समय होता था सिंचाई का। उससे पूरी रातभर नमी को जड़ों तक रिसने का समय मिल जाता था, और वह धुप से उड़ती नहीं थी। पानी के पाईप के सिरे पर अंगूठा लगाकर हम पानी की हलकी सी स्प्रे खड़े होकर चारों तरफ बिखेर देते थे, जिससे जमीन की सतह गीली लगती थी, पर पानी नीचे नहीं रिसा होता था। वही गीलापन सुबह तक पौधों की जड़ों तक पहुँच जाता था, जो पर्याप्त होता था। यह तरीका हमने हमारे घर में काम करने वाले एक प्रौढ़ उम्र के कामगार से सीखा था। उन साग-सब्जियों को खरगोश, मोर आदि जानवरों से बचाने के लिए हमने 3 फीट चौड़ी जालीदार चादर (सफेद रंग की, वही जो पोलीहाऊस में प्रयोग होती है) को खेत के चारों तरफ दीवार की तरह खूंटियों से बाँधा हुआ था। इसी तरह, वह टैंक केंचुआ खाद यूनिट से हल्का सा (1-2 फुट) नीचाई पर था। इससे यूनिट तक पानी 10-15 कदम चलकर बाल्टी से ढोना पड़ता था। वह टैंक लगभग अंडरग्राऊंड ही था। केवल उसका 2 फुट ऊँचाई का अतिरिक्त हिस्सा ही जमीन से बाहर को था। इससे टॉप पर वह केंचुआ खाद यूनिट की दीवार के टॉप के लेवल तक आ गया था। टैंक का इतना सा भाग तो जमीन के बाहर रखा जा सकता है, क्योंकि ऊपर बहुत कम पानी का दबाव होता है। कहते हैं कि अंडरग्राऊंड/भूमिगत टैंक पत्थर का ही होना चाहिए। जमीन के ऊपर के टैंक को अधिक मजबूती चाहिए होती है, इसलिए वह टैंक आरसीसी/rcc का होना चाहिए। पर कहते हैं कि आरसीसी का टैंक यदि लीक/दरार वाला हो जाए, तो उसकी मुरम्मत/रिपेयर नहीं होती। पानी के उपलब्ध हो जाने पर हमने बांस के व अनार के बहुत से पौधे लगाए, जो आज काफी बड़े-२ हो गए हैं। मुझे अनार की टहनियों की छंटाई करने में बहुत मजा आता है। यह सर्दियों के महीनों में की जाती है। उससे अनार के पौधे एक दुल्हन की तरह सज जाते हैं। सर्दियों में उसकी एक 2 फुट की टहनी जमीन में डाल दो और मिट्टी में नमी बनाकर रखो, तो वह जड़ें पकड़कर नया अनार का पौधा बन जाती है।

उस टैंक का निर्माण भी पूर्वोक्त आँगन के टैंक की तरह मस्ती, खुशहाली और अनुकूल परिस्थितियों के सहयोग से निर्बाध रूप से हुआ। हालांकि उसके लिए जो ईंटें मंगवाई थीं, वे कुछ कच्ची लगीं। गाड़ी के ड्राईवर को पहले नहीं बताया गया कि चैक करके लाना। वैसे अभी तक कोई समस्या नहीं आई है टैंक में। उसकी खुदाई करते समय बहुत से पत्थर मिले थे, जो उसकी दीवारों की चिनाई में काम आए। इसलिए हमें बाहर से कम ही पत्थर (केवल दो टिप्पर ही) मंगवाने पड़े। हमने ड्रेनेज पाईप की जगह पर एक लोहे की पाईप डाल रखी थी। पर वह छोटी पड़ गई, और जब उस पर टैंक का मलबा गिरा, तो वह उस मलबे के अन्दर ही दब गई। हमने उसे ढूँढने में बहुत जोर लगाया, पर वह मिली नहीं। खुदाई से टैंक में क्रैक पड़ने का भी डर था, पर बच गए। फालतू की मेहनत बहुत करनी पपड़ी। हम सोचने लगे कि उससे अच्छा तो ड्रेनेज पाईप को लगाने की ही न सोचते। टैंक के अन्दर ड्रेनेज पाईप के सुराख को पक्की कंक्रीट से बंद करना पड़ा। खुशकिस्मती से वहां लीकेज नहीं हुई।

ताजा डला हुआ कंक्रीट एक बच्चे की तरह बढ़ता है। उसके अणु पानी पी-पी कर अपने चारों ओर हाथ-पाँव बढ़ाते रहते हैं, और एक दूसरे को कसकर पकड़ते रहते हैं। इसीसे से तो वह दिन-प्रतिदिन मजबूती प्राप्त करता जाता है। सीमेंट-

विज्ञान का दर्शन भी शरीरविज्ञान दर्शन की तरह ही जीवंत है। इसीलिए सीमेंट के काम में एक अलग ही आनंद आता है। सीमेंट की संरचना को स्थापित करना भी एक मानव शरीर की संरचना को स्थापित करने जैसा काम है। वास्तव में, सीमेंट की खोज ही जल-संरचना के निर्माण के लिए हुई थी। वह इसलिए, क्योंकि यह अकेला, व सस्ता पदार्थ है, जो जल में पूरी तरह से मजबूती देते हुए जल में घुलता नहीं है। यह अलग बात है कि आजकल इसका उपयोग विशाल इमारतों को बनाने में हो रहा है, जिससे वातावरणीय प्रदूषण बढ़ रहा है। देखा-देखी में लोग अपने साधारण घर बनाने के लिए भी इसका प्रयोग कर रहे हैं। हालांकि इससे बने घर रहने के लिए आरामदायक नहीं होते। उन्हें आरामदायक बनाने के लिए भारी विद्युत् का प्रयोग करना पड़ता है। इससे भी प्रदूषण कई गुना बढ़ गया है। सीमेंट बनाने के लिए बहुत सी ऊर्जा की जरूरत होती है, जिसका दोहन पर्यावरण की कीमत पर होता है।

दोस्तों, हमारे दूसरे टैंक के बारे में आसपास के इलाके में बहुत सी नकारात्मक बातें भी फैलाई गईं। सुनने में आया कि लोग पीठ पीछे कहते रहते हैं कि एक ही परिवार को दो टैंक दे दिए, जबकि कई परिवारों को एक भी टैंक नहीं मिला था। कुछ लोग यह भी कहते कि सरकारी कर्मचारी होकर स्कीम ले रहे, पर वे यह नहीं समझना चाहते थे कि उस स्कीम पर सभी का लोकतांत्रिक अधिकार था। अपने अधिकार के लिए शांतिपूर्वक प्रयास करना जागरूकता की निशानी है। हालांकि एक टैंक मेरे नाम, और एक मेरे भाई के नाम था। दोनों के अलग-२ राशन कार्ड थे। वैसे उस समय नरेगा के टैंक खुले बंट रहे थे, पर जब लोग खुद ही कोशिश न करे, तो वे अपने-आप तो बनेंगे नहीं। वह बात फैलाने वाले शख्स हमारे ही गाँव के एक अधेड़ उम्र के व्यक्ति थे। वे कभी हमारे ही परिवार से अलग हुए थे। उनके नाम का टैंक शैल्फ में नहीं डाला गया था, सैंक्शन के लिए, वार्ड मेंबर के द्वारा। उस वजह से उन्होंने वार्ड मेंबर को भी काफी परेशान किया था। वैसे, उस प्रकार के एक-दो लोग अधिकाँश गाँवों में होते ही हैं। इसीलिए वे उस बात की खुन्नस हमारे उस अतिरिक्त टैंक के ऊपर निकाल रहे थे। दरअसल उन्होंने खुद ही शैल्फ में छोटा टैंक डालने को मना किया था। उन्होंने बड़े व सामूहिक टैंक की मांग शैल्फ में रखवाई थी, और वह सेंक्शन भी हो गया था। पर जब बाद में पता चला कि सभी गांववासियों का हस्ताक्षर किया हुआ अनापत्ति प्रमाणपत्र जमा कराना होता था, तब वे उसे बनाने से मुकर गए। वैसे तो सभी ने हस्ताक्षर कर देने थे। पर वे खुद ही हिम्मत नहीं जुटा सके गाँव वालों के पास जाने की, क्योंकि उन्होंने लगभग गाँव के सभी कामों में अड़ंगा डाला हुआ था। साथ में, वे डरते थे कि यदि सभी के साइन हो गए, तो वे भी मेरे टैंक से पानी कभी न कभी भर सकते हैं, क्योंकि वे अधिकृत हो जाएंगे। वैसे सभी के पास अपने टैंक थे, पर भूमि-प्रेमी अपनी अमूल्य भूमि पर निर्मित संरचना की बंदरबांट के बारे में सोचेगा भी कहाँ। वे विकास के काम को नकारते रहते थे, और उसे बड़े हलके और मजाकिया अंदाज में लेते थे। साथ में, वे विकास के काम करने वाले की टांग भी बेवजह खींचते रहते थे। वे गाँव के हरेक विकास के काम में रोड़ा अटकाते थे। उनकी वजह से गाँव के बहुत से काम रुके हुए थे, चाहे वह गाँव तक कार-जीप योग्य सड़क का हो, जंगली तालाब से खेत में बने टैंक तक बनी पानी को ले जाने वाली कूहल का रखरखाव हो, जंगली जानवरों से बचाने के लिए खेतों की इलेक्ट्रिक बाड़बंदी हो, या अन्य कोई भी काम। वे कहते थे कि पहले सब इकट्ठे होकर पुराने मनमुटाओं को सुलझाओ, तभी आगे काम होगा, पाकिस्तान के हठ की तरह। वे यह नहीं समझते थे कि नए रिश्तों से पुरानी बातें भी खुद ही सुलझ जाती हैं। वैसे वे पुरानी मनमुटाव की बातें काल्पनिक अधिक होती थीं, और तथ्यात्मक कम। जब उन्हें किसी समारोह बगैरह में आने के लिए और इकट्ठे बैठने के लिए न्यौता दिया जाता था,

तब वे न्यौता देने वाले का भी अपमान करते थे, और समारोह में भी नहीं आते थे। छोटी-२ बात पर रूठ कर अटल हठ करना तो जैसे उनकी आदत में शुमार था। वे गाँव वालों से बिलकुल भी सहयोग का रिश्ता नहीं रखते थे। दुःख इस बात का था कि उनकी जमीन हर विकास के काम के बीच में आ जाती थी। पर वे अपनी जमीन का एक इंच टुकड़ा भी गाँव की भलाई के लिए इस्तेमाल नहीं करने देना चाहते थे। उनके खुद कमजोरी और बीमारी से ग्रस्त हो जाने पर भी उनका यही हाल रहा। ये कभी पता नहीं चला कि वे अपनी जमीन अपने साथ कहाँ ले जाना चाहते थे। उनके असहयोग के रवैये को एक और परिवार ने बढ़ा रखा था। वह परिवार तो शिक्षित, नौकरीपेशा, और आर्थिक रूप से समृद्ध भी था। पर उस परिवार का वारिस नौजवान बड़ा ही धूर्त, पंगेबाज, जेल में रहकर आया हुआ, और शराबी-कबाबी था। शायद इसी टेंशन से वे भी उपरोक्त सहयोगी परिवार के साथ उसी के नक्शेकदम पर चलने लग जाते थे, हालांकि उसका पिछलग्गू जैसा बनकर। उस विरोधी नेता-परिवार में व्यवहार का ऐसा जादू मौजूद था कि वह अधिकाँश मामलों में पूरे इलाके को झूठमूठ में बरगला कर रखता था।

दोस्तों, मैंने देखा कि लोग चाहते थे कि वार्ड मैम्बर खुद ही उनके सारे टैंक बनाता, व अन्य काम भी वही करवाता। वार्ड मैम्बर उनके साथ हर जगह जाने को तैयार था, उनकी हर मदद करने को तैयार था। उसमें जनहित में काम करने की व विकास करने की बहुत लगन थी। यहाँ तक कि वह उनकी रजामंदी के बिना ही उनके फायदे के लिए उनके नाम का टैंक व अन्य काम शैल्फ में डाल देता था। जब शैल्फ सैंक्शन होकर आती थी, तब अधिकाँश लोग मुकर जाते थे। यदि किसी का नाम नहीं आता, तो चीख पड़ते कि मेरा नाम शेल्फ में क्यों नहीं डाला। सबके ऊपर अजीब सा आलसपन सवार था। लोग तो यहाँ तक चाहते थे कि वे वार्ड मेंबर को जलील, परेशान भी करते रहते, और वह उनका सारा काम भी खुद करता रहता। पता नहीं, कई लोग विकास से दूर क्यों भागते हैं, जब यह प्रमाणित तथ्य है कि भौतिक हो या आध्यात्मिक विकास, दोनों आपस में जुड़े हुए हैं। वार्ड मेंबर पिछड़े वर्ग से भी था, शायद तभी सारे लोग खोखले व आत्म-हानिकारक घमंड से भरे रहते थे। वार्ड मेंबर मेरा अच्छा दोस्त था। मैं उसके साथ अपनी गाड़ी लेकर हर उस जगह घूमा, जहां उसको मेरी जरूरत पड़ी। मैंने उसे जरूरत पड़ने पर उसकी उतनी आर्थिक सहायता भी प्रदान की थी, जितनी हो सकती थी। सभी लोग मुझे ताना मारते थे कि मैंने पैसे लुटवाए। पर वे यह सुनने को तैयार ही नहीं थे कि उसकी सहायता से मेरे लाखों के काम बने थे।

गाँव का माहौल आजकल इतना भ्रष्ट हो चुका है कि मैंने घर से दूर अपने खेत में एक बांस का पौधा लगाया था। वह बहुत सुन्दर फैल रहा था। उसे 1 साल बाद ही कोई मिट्टी के साथ उखाड़ कर ले गया। सब लोग उस घटना से बहुत हैरान थे, और बोल रहे थे कि अब तो पेड़ों की भी चोरी होने लग गई है। दोस्तों, मैं उस बांस के पौधे को फारेस्ट विभाग की एक नर्सरी के कर्मचारियों से लाया था। उन्होंने 20-30 पौधे बिना शुल्क के जनहित में दे दिए थे। इसी तरह, सीटेरिया और नेपियर किस्म की घास की जड़ें एक प्रगतिशील पशुपालक के घर से लाया था, जब मैं गौ-सेवा के काम से उनके घर गया था। वह घास एकबार रोप दिए जाने पर खुद आगे से आगे फैलती रहती है। उसकी एक जड़ को एक जगह से उठाकर दूसरी जगह रोपने पर वह पूरा घास का झुण्ड बन जाता है।

मित्रो, जल ही जीवन है, जल ही आत्मा है। इसीलिए जलदान को महादान की श्रेणी में रखा गया है। जनश्रुति है कि जब तक धरती पर जल-भण्डार मौजूद है, तब तक उसे बनाने वाला आदमी स्वर्ग में निवास करता है। इसीलिए तो पुराने समय में राजा व धनाढ्य किस्म के लोग कुँए, बावलियां, तालाब आदि बनाया करते थे। मैंने इस प्रभाव को स्वयं महसूस किया। जल-भण्डार बनाने के बाद मेरी आत्मा प्रफुल्लित रहने लगी। मेरी कुण्डलिनी मेरे मन में जल की तरह हिलोरे खाने लगी। मुझे एक विचित्र से भरपूरपने की संतुष्टि महसूस होने लगी। मैंने जो आँगन में टैंक बनाया था, वह तो लम्बे काल तक प्रयोग किया जाने वाला था। वह इसलिए, क्योंकि घर के आगे खाली गड्ढा कौन रखना चाहता है। इसी तरह मेरा मन भौतिक कार्यों में भी अधिक लगने लगा। इस प्रकार से जल-भंडारण की व्यवस्था करने के कारण मुझे बहुत से आध्यात्मिक व भौतिक लाभ मिले।

इस ई-पुस्तक को पढ़ने के लिए आपका धन्यवाद। अधिक जानकारी हेतु आप वेबसाईट demystifyingkundalini.com पर विजिट कर सकते हैं।

प्रेमयोगी वज्र के द्वारा लिखित अन्य पुस्तकें व कुछ अन्य अनुमोदित साहित्यिक पुस्तकें-

1)) Love story of a Yogi- what Patanjali says

2)) Kundalini demystified- what Premyogi vajra says

3)) कुण्डलिनी विज्ञान- एक आध्यात्मिक मनोविज्ञान

4)) Kundalini science- a spiritual psychology

5)) The art of self publishing and website creation

6)) स्वयंप्रकाशन व वैबसाईट निर्माण की कला

7) **बहुतकनीकी जैविक खेती एवं वर्षाजल संग्रहण के मूलभूत आधारस्तम्भ - एक एक खुशहाल एवं विकासशील गाँव की कहानी, एक पर्यावरणप्रेमी योगी की जुबानी**

8) ई-रीडर पर मेरी कुण्डलिनी वैबसाईट

9) My kundalini website on e-reader

10) **शरीरविज्ञान दर्शन- एक आधुनिक कुण्डलिनी तंत्र (एक योगी की प्रेमकथा)**

11) **श्रीकृष्णाज्ञाभिनन्दनम**

12) सोलन की सर्वहित साधना

13) योगोपनिषदों में राजयोग

14) क्षेत्रपति बीजेश्वर महादेव

15) देवभूमि सोलन

16) मौलिक व्यक्तित्व के प्रेरक सूत्र

17) बघाटेश्वरी माँ शूलिनी

18) म्हारा बघाट

19) **कुण्डलिनी रहस्योद्घाटित- प्रेमयोगी वज्र क्या कहता है**

20) भाव सुमन- एक आधुनिक काव्यसुधा सरस

21) Kundalini science- A spiritual psychology-part1

22) कुण्डलिनी विज्ञान- एक आध्यात्मिक मनोविज्ञान-भाग 2

इन उपरोक्त पुस्तकों का वर्णन एमाजोन, ऑथर सेन्ट्रल, ऑथर पेज, प्रेमयोगी वज्र पर उपलब्ध है। इन पुस्तकों का वर्णन उनकी निजी वैबसाईट https://demystifyingkundalini.com/shop/ के वैबपेज "शॉप (लाईब्रेरी)" पर भी उपलब्ध है। साप्ताहिक रूप से नई पोस्ट (विशेषतः कुण्डलिनी से सम्बंधित) प्राप्त करने और नियमित संपर्क में बने रहने के लिए कृपया इस वैबसाईट,"https://demystifyingkundalini.com/" को निःशुल्क रूप में फोलो करें/इसकी सदस्यता लें।

सर्वत्रमेव शुभमस्तु।

[https://demystifyingkundalini।com/](https://demystifyingkundalini.com/)